स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

UGPA-102

भारतीय प्रशासन

Hkkx&1

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

संदेश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जिसके कारण मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में जागरूकता में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

"गुरुकुल से छात्रकुल" के सूक्त वाक्य को आत्मसात करते हुए विश्वविद्यालय ने शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये गुणवत्तापूर्ण स्वअध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया गया है। छात्रहित को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा तैयार व्याख्यान को भी ऑनलाईन उपलब्ध कराया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, वेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी हैं।

प्रो0 सत्यकाम
कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGPA-102

भारतीय प्रशासन

Hkkx&1

खण्ड – एक : ऐतिहासिक संदर्भ	**3–33**
इकाई 1 : मौर्य कालीन प्रशासन	3
इकाई 2 : मुगलकालीन प्रशासनिक प्रणाली	12
इकाई 3 : ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक प्रणाली	18
इकाई 4 : 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक सुधार	23
इकाई 5 : 1947 के पश्चात् भारतीय प्रशासन ने निरंतरता एवं परिवर्तन	28
खण्ड – दो : केन्द्रीय प्रशासन	**34–67**
इकाई 6 : केन्द्रीय प्रशासन का संवैधानिक ढांचा	34
इकाई 7 : केन्द्रीय सचिवालय : संगठन एवं कार्य	39
इकाई 8 : प्रधानमंत्री कार्यालय और मंत्रिमण्डल सचिवालय	46
इकाई 9 : अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवायें	58
खण्ड – तीन : प्रादेशिक संगठन	**68–96**
इकाई 10 : राज्य प्रशासन की सांविधानिक रूपरेखा	68
इकाई 11 : राज्य सचिवालय : संगठन एवं कार्य	75
इकाई 12 : निदेशालय / प्रादेशिक प्रशासन	81
इकाई 13 : निदेशालयों और सचिवालयों के बीच सम्बन्ध	85
इकाई 14 : राज्य सेवायें एवं लोक सेवा आयोग	88

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कुलपति एवं मार्गदर्शक

आचार्य सत्यकाम — **कुलपति/मार्गदर्शक**
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 मनोज दीक्षित — **प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सदस्य**
प्रो0 आर0 के0 सप्रू — **भूतपूर्व प्रोफेसर, लोक प्रशासन, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़, सदस्य**
प्रो0 बी0एल0 शाह — **प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड, सदस्य**
प्रो0 वी0के0 राय — **राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, सदस्य**

लेखक

डॉ0 अनुभा श्रीवास्तव — **सहा0 आचार्य, राजनीति विज्ञान,**
हेमवती नन्दन बहुगुणा, पी0जी0 कालेज, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. वी. के. राय — **आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — **सहा0 आचार्य**
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पथम म्‌दण– मइ, 2023 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN- 978-81-963573-6-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2025

मुद्रक :– चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज

इकाई–1 मौर्य कालीन प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मौर्यकालीन प्रशासन

1.3 निष्कर्ष

1.4 सारांश

1.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.6 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में भारतीय लोक प्रशासन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की चर्चा की गयी है।

- इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय लोक प्रशासन के उद्भव एवं विकास के बारे में परिचित हो सकेंगे।
- इस इकाई में मौर्यकालीन राजतन्त्रीय शासन व्यवस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हम मौर्यकालीन (कौटिल्य कालीन) शासन कला, राजनीति, दण्डनीति, गुप्तचर व्यवस्था, केन्द्रीय शासन व्यवस्था आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

अध्ययन के दृष्टिकोण से भारतीय प्रशासन एक नया विषय हो सकता है लेकिन वास्तव में प्रशासन का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी की मानव सभ्यता। यही बात भारतीय प्रशासन के संदर्भ में भी कही जा सकती है। यदि एक विषय के रूप में देखे तो प्रशासन का इतिहास लगभग सौ साल पुराना ही है लेकिन व्यावहारिकता के धरातल पर इसका प्रयोग उसी समय से किया जा रह है जब से मानव ने सभ्य होना शुरू किया था। भारतीय प्रशासन का प्रयोग वैदिक काल में भी होता था। जब राजतंत्रीय शासन व्यवस्था में शासन की समस्त शक्तियां राजा में केन्द्रित होती थी। यदि हम किसी भी प्राचीन ग्रंथ को देखें तो सभी में प्रशासनिक कला का वर्णन देखने को मिलता है। बात चाहे हम कौटिल्य के अर्थशास्त्र की करें या शुक्र नीति की, चाहे मनुस्मृति की करें या फिर रामायण, महाभारत, वैदिक साहित्य, जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य, तथा पुराणों की करें सभी में प्रशासन के बारे में कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। वैदिक काल में जहां कुछ जगहों पर किसी न किसी रूप में लोकतांत्रिक व्यवस्था का स्वरूप देखने को मिलता है। वही बाद के कालखण्ड में राजतंत्र व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। राजतन्त्र व्यवस्था में प्रशासन पूर्णतः केन्द्रीयकृत हुआ करता था और समस्त शक्तियां राजा में ही समाहित होती थी। आज हम लोग लोक प्रशासन के जिन मूल सिद्धान्तों का अध्ययन करते हैं उन्हीं सिद्धान्तों का प्रयोग भारतीय व्यवस्था में सदियों से किया जा रहा है।

वैदिक सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। वैदिक काल में रचा गया ऋग्वेद दुनिया का सबसे पुराना ग्रन्थ है। इस ऋग्वेद में वैदिक कालीन प्रशासन के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। यह आश्चर्य और गर्व की बात है कि विश्व की प्राचीनतम भारतीय सभ्यता में भी प्रशासन के आधुनिक सिद्धान्तों का ही पालन किया जाता था। जिस समय अधिकांश दुनिया सभ्यता से कोसों दूर थी और केवल कुछ हिस्सों में ही सभ्यता का विकास शुरू ही हुआ था। उस समय भी हमारे यहां एक पूर्ण विकसित प्रशासनिक व्यवस्था थी।

मौर्य साम्राज्य भारत का पहला विशाल साम्राज्य था। मौर्य काल में कई यशस्वी राजा हुये थे। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री कौटिल्य ने अपने महाग्रंथ में मौर्यकालीन प्रशासन की विस्तार से चर्चा थी।

1.2 मौर्यकालीन प्रशासन

भारतीय इतिहास में सर्वप्रथम सर्वोधिक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना मौर्य काल में हुई। शासन सुचारू रूप से केन्द्र द्वारा संचालित था, जो उदार एवं सहनशील था। डॉ0 राधाकुमुद मुकर्जी ने मौर्यकालीन राज्य को संसार का सर्वप्रथम धर्मनिरपेक्ष लोक–कल्याणकारी राज्य कहा है। राजा का यह सामाजिक कर्तव्य है कि जो दास–भृत्य, बन्धु, पुत्र आदि अपने गृहस्वामी की आज्ञा का पालन न करें उन्हें वह विनीत करे। कौटिल्य ने सामाजिक कर्तव्यों के सुपालन पर बल दिया है और बाल, वृद्ध, व्याधिग्रस्त, अनाथ पुरूष एवं स्त्रियों और उनके बच्चों की रक्षा का उत्तरादायित्व राजा का माना है। अर्थशास्त्र में समस्त नागरिकों को आर्य कहा गया है। शूद्र भी जन्मतः दास नहीं, आर्य थे।

भारतीय ज्ञान की गौरवशाली परम्परा में कौटिल्य का स्थान अद्वितीय है और उसे कूटनीति तथा शासन कला का महान् प्रतिपादक कहा जा सकता है। जिस समय यूनान में राजनीतिशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान अरस्तू की दुन्दुभी बज रही थी, लगभग उसी समय आचार्य कौटिल्य भारतीय राज्यदर्शन के अधिष्ठाता, अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर विशाल साम्राज्य के प्रधानमंत्री के रूप में व्यावहारिक राजनीतिक ज्ञान का परिचय दे रहे थे।

'अर्थशास्त्र' आचार्य चाणक्य की अद्वितीय कृति का नाम है। भारत में कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' की खोज अपेक्षाकृत नवीन है। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' राजनीतिक और शासन कला की एक महान रचना है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रारम्भ में ही चार विधाओं का उल्लेख किया है। प्रथम आन्वीक्षिकी (दर्शन और तर्क), दूसरी त्रयी (धर्म–अधर्म या वेदों का ज्ञान), तीसरी वार्ता (कृषि, व्यापार आदि) और दण्ड–नीति (शासनकला या राजनीतिशास्त्र) अर्थशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय प्रमुख रूप से दण्ड–नीति ही है।

मौर्य कालीन केन्द्रीय व्यवस्थाः– मौर्य साम्राज्य के संगठन का स्वरूप एकतन्त्रीय था। केन्द्रीय व्यवस्था को सबल एवं सुदृढ़ बनाने के लिए चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने साम्राज्य को 4 प्रान्तों में विभक्त किया था–

1. **उत्तरापथ (राजधनी–तक्षशिला)**– कम्बोज, गंधार, कश्मीर, पंजाब और अफगानिस्तान के क्षेत्र
2. **अवन्तिराष्ट्र (राजधनी–'उज्जयिनी')**– काठियावाड़, गुजरात, मालवा और राजपूताना के क्षेत्र।
3. **मध्यदेश (राजधनी–'पाटलिपुत्र')**– उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल के क्षेत्र।
4. **दक्षिणापथ (राजधनी–'सुवर्ण गिरि')**– विंध्याचल के दक्षिण में स्थित सम्पूर्ण क्षेत्र

प्रान्तों की शासन–व्यवस्था का प्रमुख स्त्रोत सम्राट होता था। मौर्य शासना–प्रणाली का स्वरूप संघीय स्वरूप पर आधारित एकतंत्रात्मक था। सत्ता की सर्वोच्च शक्ति 'सम्राट' में निहित थी।

कौटिल्य का सप्तांग सिद्धान्त अथवा राज्य के तत्व

कौटिल्य ने प्राचीन राज्य शास्त्रियों के मतानुसार ही राज्य के सप्तांग सिद्धान्त का वर्णन किया है जिसका तात्पर्य है कि राज्य के सात अंग। जिस प्रकार हमारा शरीर हाथ पैर मुंह आदि अनेक अंगो से मिलकर बनता है। उसी प्रकार राज्य भही एक जीवित जागृत शरीर है। इसमें राज्य के विभिन्न अंगो को शरीर के अवयवों के समान मानने के कारण इस सिद्धान्त को राज्य का सावयव सिद्धान्त (Organic Theory of State) भी कहा जाता है। राज्य के सात अंग निम्न प्रकार हैंः–

(1) स्वामीः– कौटिल्य ने स्वामी अर्थात राजा में अनेक गुणों का होना आवश्यक बताया है। उसने राजा को एक आदर्श पुरूष माना है जिसमें हर प्रकार के गुण हों और अवगुण नहीं हैं। स्वामी के गुणों की गणना करते हुए उसने बताया कि वह उच्च कुल में उत्पन्न, धर्म में रूचि रखने वाला, दूरदर्शी, सत्य बोलने वाला, महत्त्वाकांक्षी, अथक परिश्रमी, गुणियों की पहचान और आदर करने वाला, शिक्षा प्रेमी, योग्य मंत्रियों से युक्त, सामंतगणों को वश में रखने वाला होना चाहिए। उसकी योग्यता और विद्वत्ता उसे आत्मसम्पन्न बनाती है। उसमें सेवा करने की भावना, शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा, प्रत्येक बात को समझने की शक्ति

होनी चाहिए। उसकी स्मृति तीव्र गुणों से युक्त होनी चाहिए। उसे विधान तथा तर्कशक्ति से सम्पन्न होना चाहिए। उसमें शौर्य, अपराध क्षमा करने की शक्ति होनी चाहिए। वह शक्तिसम्पन्न, आत्मसंयमी, विविध प्रकार के अश्व एवं हस्ति, अस्त्र–शस्त्रों के संचालन में निपुण हो।

(2) **अमात्यः**– राजा की दूसरी प्रकृति अमात्य होते हैं और वे राज्य संचालन के वास्तविक अंक होते हैं। अकेला राजा कितना भी गुण सम्पन्न क्यों न हो लेकिन जब तक उसके अमात्य गुणवान और योग्य नहीं होंगे, शासन सफल नहीं हो सकता। राजा के बाद अमात्य का स्थान होता था। वह एक महत्त्वपूर्ण राजकीय अधिकारी था। अमात्य प्रशानिक कार्यों की देखभाल करता था। राजा को अमात्य की नियुक्ति बहुत सोच–समझ कर करनी चाहिए। कौटिल्य ने अमात्यों के लिए उच्च वेतन तथा अन्य सुविधाएं प्रदान की थीं। शासन की सुविधा के लिए केन्द्रीय प्रशासन अनेक विभागों में विभाजित था।

(3) **जनपदः**– कौटिल्य ने जनपद प्रकृति में आधुनिक युग के राज्य के दो तत्वों का सम्मिश्रण कर दिया है। जनपद से उसका अभिप्राय किसी प्रदेश की भूमि और जनता से है। भारतीय अर्थ में जनपद का प्रारम्भिक अर्थ एक जाति के प्रदेश से लिया जाता था लेकिन जब राज्य का स्वरूप बड़े राष्ट्रीय राज्यों में परिवर्तित हो गया, उसमें अनेक जातियों के लोगों का होना आवश्यक हो गया। जनपद के गुणों के सम्बन्ध में भूमि तथा उसकी स्थिति आदि स्वरूप पर आचार्य के विचार यूनानी विचारकों–प्लेटो तथा अरस्तू से काफी मिलते हुए हैं। उनमें जो अंतर पाया जाता है वह देश–काल एवं परिस्थितियों आदि के कारण ही है। जनपद में पहला गुण यह होना चाहिए कि उनकी सीमा पर तथा मध्य में दुर्ग होने चाहिए। उसकी भूमि इतनी उपजाऊ होनी चाहिए कि थोड़े से परिश्रम से ही अधिक उत्पन्न हो सके और वह अन्न देश के निवासियों एवं आने वाले विदेशियों की आवश्कता को पूरा करने में समर्थ हो।

(4) **दुर्गः**– कौटिल्य ने द्वितीय अधिकरण के तीसरे अध्याय में राज्य के प्रकृति तत्व दुर्ग पर विचार किया है। राजा को जनपद की रक्षा करने के लिए अपने सीमांत प्रदेशों पर चारों ओर दुर्ग बनवाने चाहिए। यह दुर्ग युद्ध आदि के लिए उपयुक्त होने चाहिए और दुर्गम तथ बीहड़ प्रदेश में बनवाये जाने चाहिए। कौटिल्य ने चार प्रकार के दुर्ग बताये हैं :

- **औदिक दुर्ग**
- **पार्वत दुर्ग**
- **धान्वन दुर्ग**
- **वन दुर्ग**

(5) **कोषः**– प्रजा के हित के लिए आवश्यक कार्यों को पूरा करने के लिए, उसकी रक्षा के लिए सेना रखने के लिए तथा नगर आदि की व्यवस्था करने के लिए राज्य कोष की आवश्यकता होती है। राजा को एक उत्तम कोष पर ध्यान देना चाहिए। उसमें पहले शासकों एवं अपने धर्म से कमाये हुए मूल्यवान रत्न एवं सोना आदि होने चाहिए। प्रजा से कर के रूप में धन एवं धान्य एकत्रित करने चाहिए।

(6) **दण्डः**– राजा राज्य की रक्षा के लिए एक सुसंगठित शक्तिशाली सेना रखेगा। वह सेना पूर्वजों की सैन्य–परम्परा से चले आने वाले सैनिकों से बनेगी परम्परा से चले आ रहे सैनिक कुल–वीर और उत्साही होते हैं। इन्हें सैन्य अनुशासन एवं युद्ध की शिक्षा में पारंगत किया जायेगा। इनके परिवार, स्त्री और बच्चों की देखभाल राज्य द्वारा की जायेगी जिससे वे परिवार की दुरावस्था देखकर विचलित न हो जायें। रणक्षेत्र में गये हुए सैनिकों के परिवारों के भरण–पोषण का उत्तरदायित्व राजा का है।

(7) **मित्रः**– कौटिल्य ने राज्य की प्रकृति का अंतिम गुण मित्र बताये हैं। यह वंश–परम्परा से चले आने वाले, राजा के हितैषी हों। यह राज्य की शांतिकाल और संकटकाल दोनों में ही सहायता करते हैं, उनका स्वभाव स्थिर हो, राजा के सच्चे सहायक हों तथा हृदय से उसका साथ निभाते हों।

उपर्युक्त सप्तांग राज्य के गुण हैं। इन प्रकृतियों को 'राज सम्पत्' कहा जाता है। इनमें वर्तमान राज्य के चार तत्वों के अतिरिक्त तीन तत्वों का उल्लेख किया गया है। आधुनिक युग में राज्य के चार तत्व बताये जाते हैं।

जनता, प्रदेश, सरकार एवं सम्प्रभुता।

अर्थशास्त्र में राजाः— अपने महाग्रंथ अर्थशास्त्र में कौटिलय ने राजा के कर्तव्यों का विस्तार से उल्लेख किया है। राज्य के सात अंगों में कौटिल्य ने राजा को ही सर्वोच्च एवं प्रधान अंग माना है। उन्होंने राजतंत्रीय शासन व्यवस्था का समर्थन किया है। राजा शासनतंत्र की धुरी है और वह शासन के संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेने तथा शासन को गति प्रदान करने का कार्य करता है। कौटिल्य के शब्दों में, ''यदि राजा सम्पन्न हो तो उसकी समृद्धि से प्रजा भी सम्पन्न होती है। राजा का जो शील हो, वह प्रजा का भी होता है। यदि राजा उद्यमी और उत्थानशील होता है तो प्रजा में भी गुण आ जाते हैं। यदि राजा प्रमादी हो तो, प्रजा भी वैसी हो जाती है। अतः राज्य में कूटस्थानीय राजा ही हैं।''

राजा एक आदर्श व्यक्ति ही होना चाहिए और कौटिल्य ने ऐसे ही व्यक्ति के रूप में राजा की कल्पना की है। वह राजा को दार्शनिक सम्राट मानता है जो प्लेटो के दार्शनिक शासक से किसी भी प्रकार कम नहीं है। उसने राजा ने सम्बन्ध में बहुत ऊंचे आदशों, उद्देश्य और कर्तव्यों का वर्णन किया है। उसके मातानुसार राजा और प्रजा में पिता और पुत्र का सम्बन्ध होना चाहिए, वह पिता जैसा प्रजा का ध्यान रखे। राजा को उच्च आदर्शों और कर्तव्यों का पालन करने के लिए राजा में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है : ''वह ऊंचे कुल का हो, उसमें दैवी बुद्धि तथा दैवी शक्ति हो, वह वृद्धजनों की बात सुनने वाला हो, धार्मिक हो, सत्य भाषण करने वाला हो, परस्पर विरोधी बातें न करें, कृतज्ञ हो, उसका लक्ष्य बहुत ऊंचा हो, उसमें उत्साह अत्यधिक हो, वह दीर्घसूत्री न हो, वह सामंत राजाओं को अपने वश में रखने में समर्थ हो, उसकी बुद्धि दृढ़ हो, उसकी परिषद् छोटी न हो और वह विनय का पालन करने वाला हो।''

कौटिल्य इस वास्तविक तथ्य से परिचित था कि सर्वगुण सम्पन्न आदर्श राजा मिलना आसान नहीं है। उसके अनुसार इनमें से कुछ गुण तो स्वाभाविक होते हैं कुछ अभ्यास से प्राप्त किये जा सकते हैं। समुचित शिक्षा द्वारा उसमें गुण पैदा किये जा सकते हैं। प्लेटो की भांति उसने भी राजा के प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया है। उसका यह विश्वास था कि यदि एक कुलीन तथा होनहार व्यक्ति को बचपन से ही उचित शिक्षा दी जाये तो उसे एक आदर्श राजा बनाने के लिए तैयार किया जा सकाता है, अतः 'अर्थशास्त्र' में उस शिक्षा का वर्णन विस्तार से किया गया है जो बचपन और युवावस्था में राजा को दी जानी चाहिए।

कौटिल्य ने राजा के कर्तव्यों में जनकल्याणकारी कार्यों को बहुत महत्त्व दिया है। राजा को चाहिए कि वह बालकों, वृद्धों, रोगियों, अनाथों और स्त्रियों के हितों की देखभाल स्वयं करें, तथा अधिकारियों पर न छोड़े। वह प्रजा की रक्षा और शत्रु के आक्रमण से देश की रक्षा के लिए मंदिरों, मुनियों के आश्रमों, पाखण्डियों के मठों, वेदशालाओं, गौशालाओं और धर्मशालाओं आदि का समय—समय पर निरीक्षण करता रहे।

कौटिल्य के मतानुसार राजा के कर्तव्य ये भी हैं—''राज्य की प्रत्येक प्रकार की उन्नति करना, यज्ञ करना, प्रजा द्वारा किये जाने वाले कार्यों की व्यवस्था करना, दान देना, प्रजा पर समदृष्टि रखना, इनके सम्यक् पालन—पोषण की व्यवस्था करना, शत्रु, मित्र, उदासीन को देखरेख, उनके तदनुकूल व्यवहार करना, विधिवत दीक्षा प्राप्त किये व्यक्तियां को राज्य के विभिन्न पदों पर नियुक्त करना।

कौटिल्य राजा को आत्मरक्षा हेतु सदैव सचेत रहने का उपदेश देता है। राजा राज्य का प्राण होता है, अतः उसके जीवन की रक्षा के लिए विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है। उस समय राजा प्रायः विभिन्न षड्यंत्रों के शिकार होते थे, उनका जीवन बड़ा असुरक्षित होता था, अतः कौटिल्य ने बड़े विस्तार से इस विषय में की जाने वाली सावधानियों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार, ''राजा, राजकुमारों से सावधान रहे क्योंकि वे केकड़े के समान होते हैं जो अपने पिता को ही खा जाते हैं।'' राजकुमारों पर नियंत्रण रखने के लिए कौटिल्य ने उपाय सुझाया है कि ''उन्हें अच्छे गुरूओं से शिक्षा दिलायी जाये और बचपन से उन पर अच्छे संस्कार डाले जायें। राजा को चाहिए कि अंगरक्षकों को चयन करते समय यह देख ले कि वे विश्वास योग्य हैं या नहीं।

'अर्थशास्त्र' में इस बात पर बल दिया गया है कि मंत्रिपरिषद् का कार्य सर्वथा गुप्त रहना चाहिए। उसके मतानुसार मंत्रिपरिषद् की बैठक के लिए ऐसा स्थान चुना जाये जहाँ पक्षियों तक दृष्टि न पड़े, जहाँ से कोई भी बात बाहर का आदमी न सुन सके। सुनते हैं कि शुक, सारिका कुत्ते आदि तक जीव—जंतुओं से मंत्रियों से परामर्श की जाने वाली गुप्त बातों का भेद गया था, अतः मंत्ररक्षा का पूरा प्रबंध किये बिना इस कार्य को नहीं करना चाहिए।

राजा अत्याधिक गुप्त रखी जाने वाली बातों के विषय में मंत्रिपरिषद् की बैठक में सलाह नहीं लेता था, क्योंकि एक बड़ी बैठक में की गयी चर्चा से राजकीय रहस्यों के खुलने की सम्भावना अधिक थी। अतः राजा एक–एक मंत्री को बुलाकर उससे अलग–अलग सलाह लेता था, इस विषय में उसने एक अन्य परामर्श यह दिया है कि जिस बात पर सलाह लेनी हो, उससे उल्टी बात इशारे से पूछी जाये ताकि किसी मंत्री को यह ज्ञात न हो सके कि राजा के मन में क्या योजना है और वह वास्तव में किस विषय में उससे परामर्श लेना चाहता है। बड़ी मंत्रिपरिषद् के अतिरिक्त उस समय एक छोटी उपसमिति होती थी। इसमें तीन या चार विशेष विश्वसनीय, अनुभवी और योग्य मंत्री रहा करते थे, इन्हें 'मंत्रिणः' कहा जाता था। आवश्यक विषयों में राजा इन मंत्रियों को तथा मंत्रिपरिषद् को बुलाकर सलाह लेता था। मंत्रियों की बहुसंख्या जिस बात को कार्य की सिद्धि करने वाली बताती थी, उसे राजा किया करता था। राजा यह अच्छी तरह समझता था कि राज्यकार्य का संचालन मंत्रियों की सहायता के बिना नहीं हो सकता।

कौटिल्य मंत्रियों की एक बड़ी विशेषता यह मानता है कि वे सब प्रकार के दोषों, निर्बलताओं से, भ्रष्टाचार, काम, क्रोध, मोह आदि के दुर्व्यसनों से मुक्त हों। उसके मतानुसार मंत्रीपद पर व्यक्तियों को नियुक्त करने से पहले उनके बारे में विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं द्वारा निश्चित कर लेना चाहिए कि वे 'सर्वोपधाशुद्ध' है। उपधा का अर्थ छल द्वारा या गुप्त रीति से किसी चरित्र की परीक्षा करना है। यह चार प्रकार की–धर्म, अर्थ, काम और भय–की होती है। धर्मोपधा का अर्थ है भ्रामिक प्रसंग लेकर किसी के चरित्र की परीक्षा करना। उदाहरणार्थ, राजा नये नियुक्त अधिकारियों के धार्मिक चरित्र की परीक्षा इस प्रकार करे। वह अपने पुरोहित को झूठ–मूठ ऊपर से दिखावे के तौर पर इस कारण के आधार पर पदच्युत कर दे कि उसने उस समय अपनी नाराजगी दिखायी थी जब उसे राजा ने किसी चण्डाल को पढ़ाने या यज्ञ कराने के लिए कहा था। इस प्रकार ऊपर से अपमानित पुरोहित गुप्तचरों की सहायता से नवनियुक्त अधिकारियों के पास जाये और उन्हें कहे कि हमारा यह राजा बड़ा अधार्मिक है, इसे हराकर इस वंश के किसी गुणी व्यक्ति को राजगद्दी पर बिठा दिया जाये।

वर्तमान की भांति प्राचीन भारत में भी राजनीति के क्षेत्र में राजदूत को महत्तपूर्ण स्थान दिया जाता था और उसे महान् गौरव प्राप्त था। रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र और कौटिल्य द्वारा उद्धत पुरातन विद्वानों की दृष्टि में भी राजदूत प्रतिष्ठित व्यक्तित्व माना गया है। कुछ आचार्यों ने तो राजदूत को 'मंत्रिपरिषद्' का सदस्य तक स्वीकार किया है। कौटिल्य ने राजदूत को 'राजा का मुख' माना है क्योंकि राष्ट्र में जो राजा का कार्य व्यवस्था और नीति–नियम निर्धारित करना होता है, परराष्ट्र में राजा का वही कार्य राजदूत करता है। राजदूत परराष्ट्र संबंध करना होता प्रतिनिधित्व करता है। मनु ने राजदूतों की योग्यता के संबंध में कहा है कि वह बहुश्रुत आकार तथा चेष्टाओं के विकार से हृदयस्थ भावों को पकड़ने वाला, स्मृतिमान, दर्शनीय, दक्ष, सत्कुलीन, राजभक्त, देश–काल का ज्ञाता, पवित्र आचरण वाल, वाग्मी और समस्त शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए। महाभारत के शांति पर्व में भी दूत की यही विशेषताएं उल्लिखित हैं। कौटिल्य ने राजदूत के प्रस्थान करने व आचार–व्यवहार की पद्धति के संबंध में बहुत सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है। उनके अनुसार राजदूत को प्राण–संकट पैदा हो जाने पर भी अपने राजा के संदेश को अविकल रूप में अन्य राजा के सम्मुख प्रस्तुत करें।

कौटिल्य ने दूतों की तीन श्रेणियाँ बतायी हैं :

(1) निसृष्टार्थ जिसका प्रमुख कार्य अपने राजा का सन्देश ले जाना के लिए सन्देश लाना था। इस श्रेणी के दूतों में अमात्य की सारी योग्यताएँ बतायी गयी थीं।

(2) दूसरी श्रेणी के परिमितार्थ दूतों के लिए अमात्य की 3/4 योग्यताएँ निर्धारित की गयी हैं। परिमितार्थ दूत की पहुँच कुछ निर्धारित सीमाओं तक ही रखी गयी थी।

(3) तीसरे शासन हर दूतों का एकमात्र कार्य सन्देशों का आदान–प्रदान करना था।

गुप्तचर–विभागः– कौटिल्य गुप्तचर विभाग को बहुत ही आवश्यक विभाग मानता है। इस व्यवस्था द्वारा राजा जनता एवं अपने कर्मचारियों का पूरा नियन्त्रण रखता है। कौटिल्य के द्वारा दी गयी दिनचर्या में हमने देखा है कि राजा प्रातः और सायंकाल एक–एक घड़ी गुप्तचरों को देता है। उनसे समाचार एवं सूचनाएँ प्राप्त करता है एवं उन्हें आगे का कार्य बताता है। यही कार्य राजा इन दो घड़ियों में करता था। गुप्तचर राजा की आँख और कान दोनों होते हैं। राज्य के अन्दर होने वाले षड्यन्त्रों का पता लगाना, जनता पर अधिकारियों द्वारा या धनिकों द्वारा अत्याचार का पता लगाना राजाा के लिए बहुत ही आवश्यक था। आज भी यह व्यवस्था प्रत्येक देश में प्रचलित है।

इस मामले में रूस और चीन का गुप्तचर विभाग बहुत निपुण एवं संगठित है। यद्यपि अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी व जापान आदि भी अच्छे गुप्तचर रखते हैं परन्तु रूस के समान नहीं।

आचार्य कौटिल्य का मत है कि ''राजा राज्य कर्मचारियों तथा प्रजा की शुद्धता जानने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करे। धन तथा सम्मान द्वारा उन्हें सदैव ही संतुष्ट रखें।''

गुप्तचरों के भेदः— गुप्तचरों की नियुक्ति करते समय कौटिल्य ने राजा को उपदेश दिया है कि वह दो श्रेणी के स्थायी गुप्तचर जो एक ही स्थान पर रहकर कार्य करें तथा भ्रमणशील गुप्तचर जो घूम—घूमकर कार्य करें, नियुक्त करे। दोनों श्रेणियों में निम्न अनेक प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख है :

(1) **कापटिकः**— दूसरों के रहस्य को जानने वाला, बड़ा दबंग और विद्यार्थी की वेशभूषा में रहने वाला गुप्तचर कापटिक कहलाता है। इस गुप्तचर को धन, मान और सत्कार से संतुष्ट कर मंत्री उससे कहे 'जिस किसी की भी तुम हानि होते देखो, राजा को और मुझे प्रमाण मानकर तत्काल ही तुम मुझे सूचित कर दो।'

(2) **उदास्थितः**— बुद्धिमान, सदाचारी, सन्यासी के वेश में रहने वाले गुप्तचर का नाम उदास्थित है। वह अपने साथ बहुत—से विद्यार्थी और बहुत—सा धन लेकर वहाँ जाकर विद्यार्थियों द्वारा कार्य करवाये, जहाँ कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के लिए भूमि नियुक्त है। उस कार्य से जो लाभ हो उससे सब साधु—सन्यासियों के भोजन वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करे।

(3) **गृहपतिकः**— पवित्र हृदय और गरीब किसान के वेश में रहने वाला गुप्तचर 'गृहपतिक' कहलाता है। वह कषि कार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर की भांति कार्य करता रहे।

कौटिल्य यह भी बताता है कि राज्य कर्मचारियों को इतना वेतन मिलना चाहिए जिससे वे उत्साहपूर्वक काम कर सकें। राज्य की आय का 1/4 भाग राज्य के कर्मचारियों के वेतन आदि में व्यय होना चाहिए। उच्च पदाधिकारियों को इतना वेतन मिलना चाहिए कि वह प्रलोभन के जाल में फंस सके या राजद्रोह न कर बैठें। ईमानदारी प्रशासन का मेरूदण्ड है। रिश्वत के लिए वे कठोर दण्ड की व्यवस्था करते हैं। कर्मचारियों की पूर्ण जिम्मेदारी कौटिल्य न राजा पर डाली है।

दण्ड—व्यवस्थाः— यद्यपि कौटिल्य ने निरंकुश राजतन्त्र की व्यवस्था की बड़ी प्रशंसा की है परन्तु वह राजा को विधि के ऊपर नहीं मानता था। विधि के शासन का राजा संचालक था। वह स्वयं विधि पालन करता था और जनता से कराता था। कौटिल्य ने धर्म राज्य की कल्पना की है। राजा को धर्म के बाद द्वितीय स्थान प्रदान किया गया है। इसका उद्देश्य यही था कि राजा धर्म के विपरीत न चले और और वह स्वेच्छाचारी शासक न बन पाये। कौटिल्य ने विधि के 4 स्रोत माने हैं—धर्म, व्यवहार, चरित्र एवं राजा। राजा की आज्ञा सर्वश्रेष्ठ है।

कौटिल्य का मत है कि राजा दण्ड देने वाला होता है। परन्तु उसका दण्ड सुधारात्मक होना चाहिए। राजा दण्ड का प्रतीक है और वह अपराधी को दण्ड एवं चरित्रवान को पुरस्कार देने का अधिकारी है। अतः वह 'इन्द्र' और 'यम' के समान है। संहारात्मक अथवा प्रतिशोधात्मक दण्ड उचित नहीं। दण्ड व्यवस्था निष्ठुरतापूर्ण न होकर सहृदयतापूर्ण होना चाहिए।

कौटिल्य का यह मत था कि दण्ड नियम अथवा कानून के अनुसार होना चाहिए और वह न अधिक हो और न कम। दण्ड देते समय किन—किन सिद्धान्तों का पालन किया जाय, इस विषय में कौटिल्य कहता है कि दण्ड का निश्चय, अपराध की मात्रा, अपराधी का सामर्थ्य, अपराधी का वर्ण एवं अपराधी के सुधार को ध्यान में रखकर देना चाहिए।

कौटिल्य ने विधि के अनुसार विविध प्रकार के दण्डों का निर्धारण किया है। वह दण्ड की तीन श्रेणियाँ बताता है—अर्थदण्ड, काय—दण्ड, बन्धनागार दण्ड। अर्थदण्ड छोटे और बड़े दोनों ही होते हैं। अपराधी के सामर्थ्य के अनुसार अर्थदण्ड 'यण' के आठवें भाग से लेकर 1000 यण तक हो सकता है।

कौटिल्य ने दण्ड—व्यवस्था का प्रयोग चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में किया। उचित दण्ड के कारण राज्य अपराधियों की संख्या बहुत कम हो गयी। लोगों ने दरवाजों पर ताले लगाने छोड़ दिये। एकान्त स्थानों या सड़कों पर भी डाके या राहजनी की घटना नहीं होती थी।

न्याय व्यवस्थाः— कौटिल्य के अनुसार राजा को न्याय के लिए अलग से एक अधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए। न्यायाधीश ब्राह्मण हो तथा वह धर्मशास्त्र एवं विधिशास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए। प्रत्येक मामले की सुनवाई की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। अभियुक्त को अपना पक्ष प्रस्तुत करने एवं सफाई देने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। मनु की भाँति कौटिल्य भी स्वधर्म पालन पर बहुत जोर देता था। उसका मत था कि स्वधर्म पालन से मनुश्य का लोक एवं परलोक दोनों ही सुधरते हैं। प्रजा अपने—अपने स्वधर्म पालन में तत्पर रहे उसी के लिए न्याय व्यवस्था, न्यायालय एवं दण्ड व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाता है। कौटिल्य के अनुसार राजा को भी धर्मानुसार ही प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। राजा को न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करनी चाहिए, यही उसका धर्म है।

न्यायालयों के गणन के सम्बन्ध में कौटिल्य ने तीन प्रकार के न्यायालयों को बताया है : (i) जनपद सन्धि न्यायालय, (ii) संग्रहण न्यायालय, (iii) द्रोणमुख न्यायालय। वास्तव में, मौर्यकाल अपनी न्याय व्यवस्था के लिए इतिहास—प्रसिद्ध है। इस काल में न्याय का उद्देश्य सुधारवादी ने होकर आदर्शवादी था। एकतन्त्रात्मक शासन के रूप में 'सम्राट' सर्वोच्च न्यायिक पदाधिकारी था, जबकि ग्राम सभा सबसे छोटा न्यायालय था। जिसे 'ग्रामिक' कहते थे। ग्राम न्यायालय से ऊपर क्रमशः 'संग्रहण', द्रोणमुख' 'स्थानीय या जनपद' के न्यायालय होते थे। जनपद न्यायालय के ऊपर पाटिलपुत्र स्थित 'केन्द्रीय न्यायालय' होता था। सबसे ऊपर 'राजा का न्यायालय' था। ग्राम और राजा के न्यायालय के अतिरिक्त सभी न्यायालय दो प्रकार के होते थे—

(i) व्यवहार या धर्मस्य न्यायालयः— आधुनिक भाषा में इसे सिविल कोर्ट कहा जाता है।

(ii) कण्टक शोधक न्यायालयः— आधुनिक भाषा में यह फौजदारी न्यायालयों के समान थे।

अर्थव्यवस्थाः— कौटिल्य अर्थव्यवस्था को राज्य के लिए अति आवश्यक समझता था। राजकोष राज्य के लिए आधार—स्तम्भ के समान है। राजकोष का अध्यक्ष समाहर्ता बताया गया है। समाहर्ता का काम है कि कोष परीक्षित सुवर्ण मुद्राओं को ग्रहण करना। इसी प्रकार शुद्ध और नये अनाजों के गोदामों (कोठारों) में संग्रह की व्यवस्था करना। गुप्तचरों द्वारा कोष सम्बन्धी जानकारी राजा प्राप्त कराते रहना चाहिए। चोरी करने वाले को दुगुनी सजा दी जानी चाहिए और यदि कोषाध्यक्ष कोष का अपहरण करे तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य ने समाहर्ता का दूसरा कर्तव्य यह भी बताया है कि वह दुर्ग, राष्ट्र, खान, सेतु, वन, ब्रज और वणिक पथ आदि द्वारा राष्ट्रीय कोष के लिए धन एकत्र करे। उसका सतत् प्रयास यह रहे कि कोष की अभिवृद्धि होती रहे तथा व्यय कम होता रहे। व्यय के सम्बन्ध में कौटिल्य ने इसकी दो मदें बतायी है :

(i) **आवर्तक**—यह व्यय है जो प्रतिदिन या प्रतिमास किया जाता है। इसे रेकरिंग भी कहा जाता है।

(ii) **अनावर्तक**—यह व्यव दैनिक, पाक्षिक तथा मासिक न होकर वार्षिक होता है, इसे नॉन—रेकरिंग कहा जा सकता है।

स्थानीय शासन— कौटिल्य ने स्थानीय शासन व्यवस्था पर काफी ध्यान दिया है। वह राजा द्वारा गोप, स्थानिक और नम्बरदार तीन अधिकारियों की नियुक्ति का समर्थन करता है।

(i) **गोप**— पाँच या दस ग्रामों तक का अधिकारी गोप कहलाता था। उसका काम ग्राम की सीमा निर्धारित करना, भूमि के भिन्न—भिन्न भागों को कृषि योग्य बनाना। करदाताओं और कर न देने वालों की सूचियाँ बनाना आदि था।

(ii) **स्थानिक**— जिले के समस्त गोप स्थानिक के अधीन रहते हैं। वह इनके कार्यों का निरीक्षण करता है। स्थानिकों के ऊपर प्रदेष्टा नामक अधिकारी होता है।

(iii) **नगराध्यक्ष**— प्रत्येक नगर का अधिकारी नगराध्यक्ष होता है। वह नगर की देखभाल करता है। नगर में धर्माध्यक्षों की व्यवस्था भी थी। ये नगर में धर्मस्थानों की देखभाल एवं व्यवस्था करते थे। कौटिल्य विकेन्द्रीकरण के पक्षपाती थे।

राज्य की वैदेशिक नीतिः— कौटिल्य की विदेश नीति में भारत क्या विश्व में कोई उसकी बराबरी नहीं रखता है। मैकियावली भी कूटनीति में कौटिल्य की बराबरी नहीं कर सकता है। शत्रु को नष्ट करने के लिए वह उचित—अनुचित सभी प्रकार के उपाय काम में लाने को कहते हैं। वह विषकन्या के प्रयोग से भी नहीं चूकते हैं।

शायद कुछ विषकन्याएँ सदैव उनके पास रहती हों तथा उनका प्रशिक्षण होता हो।

आचार्य मनु का विदेश नीति में जितना अनुसरण महाभारत में वेदव्यास ने किया और आचार्य माघ ने शिशुपाल–वध नाटक में किया है उतना ही चाणक्य ने भी स्वीकार किया है। मनु की 'मण्डल व्यवस्था' का अनुसरण कौटिल्य ने पूरी तरह किया है। कौटिल्य अपनी कुटिलता के कारण ही कौटिल्य कहलाये। वे कहते थे कि राजा, विदेशी राजा का विश्वास न करे। मैकियावली का ग्रन्थ प्रिन्स इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्र से मिलता–जुलता है। उसमें बताया गया है कि किस राजा से वह मित्रता करे? किस राजा से शत्रुता करे? पड़ौसी राज्यों में कैसा व्यवहार रखे? शत्रु की शक्ति को कैसे क्षीण करे। इस सम्बन्ध में कौटिल्य ने दो प्रमुख सिद्धान्तों–'मण्डल सिद्धान्त' एवं 'षाड्गुण्य सिद्धान्त' का पालन किया है। उनका कहना है कि विदेश नीति में राजा को साम, दाम, दण्ड, भेद–चारों का प्रयोग करना चाहिए।

1.3 निष्कर्ष

हालांकि गुप्तकाल से पूर्व भी प्रशासनिक व्यवस्था उच्चकोटि की थी लेकिन गुप्त शासकों ने तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था में अपनी जरूरत के मुताबिक आवश्यक सुधार किये। उस समय सम्राट को विभिन्न राजकीय कार्यों में सलाह देने के लिए एक परिषद् होती थी जिसे उच्चाधिकार प्राप्त थे। केन्द्रीय स्तर पर प्रशासन को कई विभागों में विभाजित किया गया था और प्रत्येक विभाग का उत्तरदायित्व एक मंत्री को दिया गया था। मंत्री के अलावा प्रत्येक विभाग में अमात्य, कुमारामात्य और अन्य अधिकारी भी होते थे। राज्य में कानून एवं व्यवस्था की स्थिति को बनाए रखने के लिए एक पुलिस विभाग भी होता था। गुप्तकालीन पुलिस विभाग बेहद उन्नत अवस्था में था।

1.4 सारांश

यह कहा जा सकता है कि मौर्यकालीन शासन व्यवस्था जो राजतन्त्रीय शासन स्वस्था का समर्थन करती है ने एक मजबूत शासन तन्त्र की स्थापना के ऐसे सर्वमान्य सिद्धान्तों की रचना की जो आज की वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है।वर्तमान पुलिस व्यवस्था भी मौयकालीन पुलिस व्यवस्था से कुछ सीख ले सकती है। तत्कालीन व्यवस्था में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' होता था और ग्राम का सर्वोच्च अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था। ग्राम से ऊपर विषय होता था। एक विषय के अंतर्गत कई ग्राम आते थे। विषय के ऊपर क्षेत्र–प्रदेश और उसके ऊपर प्रांत होता था

1.5 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. **भारतीय प्रशासन** :– अवस्थी एण्ड अवस्थी लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. **भारतीय प्रशासन** :– प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. **भारत में लोक प्रशासन**:– बाबूलाल फाड़िया, साहित्य भवन, आगरा।
4. **भारत का प्रशासन** :– होशियार सिंह।

1.6 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मौर्य प्रशासन कितने प्रान्तों में विभाजित था?

   (a) 4 (b) 5 (c) 6 (d) 7

2. मौर्य प्रशासन में केन्द्र के समस्त उच्चाधिकारियों को क्या कहा जाता था?

   (a) महामात्य (b) ग्रामिक (c) समाहर्ता (d) अमात्य

3. जनपद का सर्वोच्च अधिकारी जिसका प्रमुख कार्य राजकीय कर को एकत्रित करनाथा, क्या कहलता था?

(a) प्रादेशिक (b) समाहर्ता (c) व्यावहारिक (d) प्रशासता

4. गुप्तकालीन प्रशासन में अश्वसेना का नायक था?

(a) बलाधिकृत (b) कुमार मात्य (c) महाप्रतिहार (d) भटाष्वपति

5. गुप्तकाल में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी?

(a) ग्राम (b) सार्थवाह (c) क्षेत्र (d) देश

लघुउत्तरीय प्रश्नः–

1. गुप्तकालीन प्रशासन की प्रमुख विशेषताएं क्या थी?
2. गुप्तकालीन प्रशासनिक राजतन्त्रात्मक व्यवस्था का उल्लेख करें।
3. राज्य के सप्तांग सिद्धान्त का वर्णन करें।
4. मौर्य प्रशासन के अन्तर्गत दण्डनीति का वर्णन करें।
5. मौर्य प्रशासन की न्यायापालिका पर टिप्पणी करें।

दीर्घउत्तरीय प्रश्नः–

1. मौर्य प्रशासन की विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख करें।
2. मौर्य साम्राज्य के बारे में बताते हुये उसकी प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में वर्णन करें।

इकाई–2 मुगलकालीन प्रशासनिक प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मुगलकालीन प्रशासनिक प्रणाली

2.3 सारांश

2.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.5 बोध प्रश्न

2.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य हमें मुगल कालीन साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में जानकारी प्रदान करना है।
- मुगल कालीन प्रशासनिक व्यवस्था किस प्रकार की थी। उसने भारत की प्रशासनिक व्यवस्था में किन नये तत्वों को जोड़ने का कार्य किया तथा मुगल कालीन प्रशासन की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासन के विकास में मुगल काल का अहम् योगदान है। मुगल शासकों द्वारा प्रशासन की कई प्रणालियों की खोज की गयी थी। प्रशासनिक विकास की दृष्टि से मुगल काल का अत्याधिक महत्व है। मुगल काल के प्रशासन में अमीर और उमरा का अत्याधिक दखल रहता था। उमरा शब्द, मुगल काल में सामान्यतः उन सभी अधिकारियों के लिए प्रयुक्त होता था जो एक हजार या उससे अधिक मनसब के अधिकारी थे। मनसब एक प्रकार की राजकीय श्रेणी या ग्रेड था। एक हजार जात का ओहदा आमतौर पर साधारण मनसबदारों और अमीर वर्ग 'उमरा' के बीच की विभाजक रेखा मानी जाती थी। भारत में मुगल सल्तनत की नींव बाबर ने रखी थी और अपने साथ एक संस्था के रूप में 'उमरा' परम्परा भी वही लाया था।

2.2 मुगल कालीन प्रशासनिक प्रणाली

मुस्लिम शासन को समझने के लिए इस्लाम की प्रकृति को ध्यान में रखता आवश्यक हैं। इस्लाम एक ऐसे समाज की स्थापना की अपेक्षा करता है जो अल्लाह के द्वारा बनाये गये कानूनों पर आधारित हो। यह कानून कुरान व शरियत में दिये गये हैं। भारत में रहने वाले हिन्दुओं को वह खुदा में विश्वास न करने वाला व काफिर मानते थे। काफिरों पर उन्होंने पृथक से जजिया नामक कर लगा दिया था। सल्तनत–काल में हिन्दुओं को हेय दृष्टि से देखा जाता था और उनका बहुत कम अधिकार प्रदान किये गये थे। हिन्दुओं की यह स्थिति सम्पूर्ण सल्तन–काल तक बनी रही। अकबर के शासनकाल में हिन्दुओं के प्रति उदारता का न केवल भाव प्रस्फुटित हुआ बल्कि उनकी स्थिति में सुधार भी आया। अकबर धर्मान्ध तथा कट्टपथी राजा ने अपितु वह एक उदारवादी तथा सहनशील राजा था। अकबर के उत्तराधिकारियों ने भी उसी नीति का पालन किया किन्तु औरंगजेब ने जब सत्ता संभाली तब अवश्य नीति में परिवर्तन आया। वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उसने दुबारा हिन्दुओं पर जजिया कर आरोपित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य की शान्ति में विघ्न पड़ा और चारों ओर असन्तोष छा गया।

मुगल साम्राज्य का केन्द्रीय शासन :– मुगल बादशाह अकबर ने शाही सेवा में समाज के विभिन्न वर्गों का एकीकरण किया। उसने उदार धार्मिक नीति का पालन किया जिस कारण उसके प्रशासन में हिन्दू अधिकारी भी उच्च ओहदों पर थे। अकबर ने राजपूत राजाओं के साथ विवाह–सम्बन्ध भी बनाए। वास्तव में अकबर ने विवाह नामक संस्था का उपयोग एक राजनयिक उपकरण के रूप में किया था। उसने हिन्दुओं को योग्यतानुसार ऊंचे

मनसब प्रदान किये। इस वर्ग में टोडरमल और बीरबल का नमा लिया जा सकता है। टोडरमल सबसे काबिल और विद्वान व्यक्ति थे। उन्हें राजस्व सम्बन्धी मामलों का विशेषज्ञ कहा जाता था। अपनी काबिलियत के कारण ही वे दीवान जैसे ऊंचे पद तक पहंचे थे। भारतीय प्रशासन में मुगलों का सबसे बड़ा योगदान मनसबदारी व्यवस्था थी। मुगल प्रशासन में जागीदार की अहम भूमिका रखते थे। मुगल–काल के प्रशासन पर यदि दृष्टिपात किया जाय और तथ्यों का विश्लेषण किया जाय, तो निम्नलिखित बाते स्पष्ट होती हैं।

(1) **बादशाहः**— राजा मुगल–साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था। सन् 1507 में मुगल बादशाह बाबर ने स्वयं को 'बादशाह' घोषित किया था। बाबर के सभी उत्तराधिकारियों ने स्वयं को 'पादशाह' कहा। 'पाद' का अर्थ स्थिरता और 'शाह' का अर्थ शासक है। इसका आशय यह था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं हैं। इस्लाम के नियमों के अनुसार राजा जनता द्वारा चुना जाना चाहिए। परन्तु मुस्लिम शासकों ने यह अधिकार राजघराने के व्यक्ति तक ही सीमित रखा। सिद्धान्त में तो यह माना जाता था कि सबसे बड़ा पुत्र बादशाह का उत्तराधिकारी बनेगा परन्तु व्यवहार में सदैव बड़ा पुत्र ही गद्दी पर नहीं बैठता था। अक्सर ऐसा होता था कि सम्राट के जीवित रहते हुए ही उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष होने लगता था। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मेत्तर मामलों में अन्तिम निर्णायक व अन्तिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीति, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकारी है।

मुगल बादशाह बहुत शान–शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। उनको बहुत–से विशेषाधिकार प्राप्त थे और उनकी इच्छा ही कानून थी। इन सबके उपरान्त भी राजा का जीवन नियमों से बंधा हुआ था और यह माना जाता था कि जनता की भलाई में ही राज की भलाई है।

(2) **मन्त्रिपरिषद्**:— हिन्दू राज्य–व्यवस्था तथा इस्लामी शासन–व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद् की स्थिति भिन्न–भिन्न थी। हिन्दू राज्य–व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद् का बड़ा सम्मान व महत्व था। राजा का मन्त्रिपरिषद् से परामर्श लेना आवश्यक था। परन्तु मुसलमान–शासनकाल में मन्त्रिपरिषद् की स्थिति ऐसी सम्मानजनक नहीं थी। यह कोई आवश्यक नहीं था कि बादशाह उसकी सलाह के अनुसार ही कार्यवाही करें। इस्लामी–काल में मन्त्रिपरिषद् में कितने अधिकारी होंगे, यह भी निश्चित नहीं था। मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की क्या योग्यता हो, इसका उल्लेख भी इस्लामी नियमों में नहीं था। दो अधिकारी जो इसमें सम्मिलित होते थे, वे अवश्य निर्धारित थे–एक 'वकील' और दूसरा 'वजीर'। बाबर व हुमायूं ने वज़ीर नियुक्त किये थे परन्तु अकबर के समय में वकील नियुक्त किये गये।

(3) **मीर बख्सी (सेनाध्यक्ष)**:— मुगल सेना की संख्या के सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। 'आईन–ए–अकबरी' के अनुसार मुगल सेना की कुल संख्या में घुड़सवार 3,86,618, पैदल सेना 42,13,382, हाथी तोपें 4,200 नौसेना जहाज 4,500 थे। इन सबमें घुड़सवार सेना सबसे महत्वपूर्ण थी जो मनसबदारी प्रथा आधारित थी। इसके अतिरिक्त विशिष्ट घुड़सवार थे जो सीधे सम्राट के अधीन थे। पैदल सैनिक दो प्रकार के थे– लड़ाकू और गैर–लड़ाकू। पैदल सेना प्लाटूनों में विभाजित थी जिसमें पन्द्रह सिपाही होते थे। यद्यपि मुगल सेना की संख्या काफी थी और वह हथियारों से अच्छी तरह लैस थी, फिर भी उसमें कुछ कमियां थी। प्रथम, मनसबदारी प्रथा में अनेक बुराइयां थीं। सिपाही और घुड़सवार बादशाह की तुलना में अपने मनसबदार के प्रति अधिक निष्ठावान होते थे। इस प्रकार मुगल सेना विभिन्न मनसबदारों के सिपाहियों का जमघट मात्र थी। द्वितीय, सिपाहियों के लिए उचित प्रशिक्षण का अभाव था। तीसरे, जब सेना कूच करती थी तब उसमें विलास तथा ऐयाशी करने की समस्त सुविधाएं होती थीं।

(4) **न्याय व्यवस्था**:— यह न्याय विभाग का प्रधान होता था। सामान्यतः मुगल सम्राटों की न्याय–व्यवस्था निष्पक्ष तथा आम जनता के लिए थी। इस दिशा में हिन्दुओं का बहुमत होने के कारण सम्राटों ने कठोर इस्लामी कानूनों का पालन नहीं किया। जहाँगीर निष्पक्ष न्याय के लिए प्रसिद्ध था। उसके शासनकाल में न्याय–व्यवस्था उदार तथा आम जनता के लिए थी।

(5) **राजस्व–व्यवस्था**:— भू राजस्व मुगल–शासन की आय का मुख्य स्त्रोत था। मुगलों ने शेरशाह सूरी द्वारा स्थापित राजस्व–व्यवस्था को अपनाया था। भू–राजस्व व्यवस्था को नया स्वरूप राजा टोडरमल ने सन् 1582 में दिया था। इस प्रथा की विशेषताओं में पहली विशेषता यह थी कि जमीन का अच्छी तरह से

सर्वेक्षण किया जाये। सर्वेक्षण करके जमीन की अलग–अलग क्षेणियों में बाँटा जाये। बँटवारे का आधार जमीन में होने वाली पैदावार हो। मालगुजार की सहायता के लिए कुछ कर्मचारी होते थे। प्रारम्भ में यह व्यवस्था सन्तोषप्रद ढंग से कार्य करती रही परन्तु कालान्तर में इस व्यवस्था की कार्यशैली में गिरावट आयी।

जागीरदारी:– इस्लामी युग में जागीरदारी के सदस्य विभिन्न वर्गों के थे। सल्तनत और मुगल–काल में शासन में दो प्रकार के तत्व निहित थे। एक तत्व था भारतीयों का और दूसरा तत्व था गैर–भारतीयों को। फारस व अरब से आये हुए शासकों ने भारत में शासन स्थापित किया था। स्वाभाविक था कि जागीरदारों में फारस के लोग, अरब के लोग और भारत के लोग थे। इनके अतिरिक्त तुर्की और तातार लोग भी इस वर्ग में सम्मिलित थे। जागीदारी के सदस्यों को जो जागीरें बांटी जाती थीं, उनकी प्रकृति पैतृक नहीं होती थी। जागीदार की मृत्यु के पश्चात् जागीर पुनः बादशाह के पास आ जाती थी।

मनसबदारी प्रथा:– मुगल–काल में प्रशासन सैन्य प्रकृति का था। प्रत्येक सरकारी अधिकारी को सेना में भर्ती होना पड़ता था। लोक–सेवा में मनसबदारी व्यवस्था प्रारम्भ की गयी जिसमें नागरिक एवं सैनिक अधिकारी सम्मिलित होते थे। व्यवस्था के तहत शासकीय अधिकारी को एक 'मनसब' या एक सरकारी पद मिल जाता था और उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह एक निश्चित संख्या में सेना हेतु सैनिक देगा। अकबर के समय में मनसबदारों के 33 वर्ग थे। यह मनसबदार दस सैनिकों से लेकर दस हजार सैनिकों तक अपने अधीन रखते थे। सबसे श्रेष्ठ मनसबदार शाही खानदान के होते थे। वे स्वयं बादशाह के द्वारा नियुक्त होते थे, वहीं उन्हें पदोन्नत करता था और बादशाह ही उन्हें पद से हटा सकता था। सेना में दिया गया पद भी पैतृक नहीं होता था। शासकीय अधिकारी के रूप में कभी भी उसको नया उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता था। इस प्रसंग में बीरबल का उदाहरण देना समीचीन है। बीरबल अति श्रेष्ठ सभासद था जो सम्राट को सदैव अच्छा परामर्श देता था। मुगल–काल में अधिकारियों को अच्छा वेतन तथा सुविधाएँ प्राप्त थीं। अधिकारियों को भुगतान दो प्रकार से किया जाता था–नकद या जागीर के रूप में। अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में मनसबदारी प्रथा ठीक बनी रही किन्तु औरंगजेब के काल में इस प्रथा में गिरावट आयी और उसके बाद खराब ही होती गयी।

मुगलकालीन प्रान्तीय प्रशासन:– प्रशासन की प्रभावशीलता के लिए विशाल मुगल–साम्राज्य को सूबों या प्रान्तों में बाँटा गया था। इनमें समय–समय पर परिवर्तन होता रहता था। अकबर के समय प्रान्तों की संख्या सन् 1602 के पूर्व बारह थी जो आगे चलकर पन्द्रह हो गयी। प्रान्त 'सरकारों' में विभाजित किये जाते थे। सरकार आज के जिले के समान थे। सरकार पुनः परगनों में विभाजित थे। ये सब प्रशासन की महत्वपूर्ण इकाइयाँ थीं। प्रान्त का प्रमुख सूबेदार होता था जिसकी नियुक्ति बादशाह करता था। सूबेदारों का तीन या पाँच वर्ष में दूसरे प्रान्तों में स्थानान्तरण कर दिया जाता था। सूबेदारों को अच्छा वेतन और भत्ता मिलता था तथा वे शान–शौकत का जीवन व्यतीत करते थे।

मुगल साम्राज्य में स्थानीय शासन:– प्रान्त सरकारों में विभाजित किये जाते थे। सरकार आज के जिले के समान थे। जैसे प्रान्तों में केन्द्र व प्रान्त का दोहरा शासन होता था, उसी प्रकार सरकारों में भी दोहरा शासन होता था। सरकार का प्रशासन दो भागों में विभाजित होता था–कार्यपालिका तथा भू–राजस्व का भाग। प्रत्येक सरकार परगनों में विभाजित होता था। कुछ गाँवों के समूह को मिलाकर परगना बनता था। परगना आज के तहसील या तालुक के समान थे। परगना प्रशासनिक तथा भू–राजस्व इकाई होते थे। मुगल–शासनकाल में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था नहीं थी। आज की भाँति नगर–प्रशासन का अभाव था।

इस्लामी न्यायशास्त्र का पालन करते हुए और अन्य मुस्लिम राजतन्त्रों के प्रशासन से प्रभावित होकर अकबर ने वकील पद के अधिकार एवं कर्तव्यों को कुछ मंत्रियों के बीच बांट दिया। ये मंत्री निम्न प्रकार थे–

(1) दीवान या वजीर, जिस पर राजस्व एवं वित्तीय मामलों का दायित्व था,

(2) मीर बक्शी, जिस पर सेना के प्रशासन एवं संगठन की जिम्मेदारी थी,

(3) सदर, जो धार्मिक एवं न्याय विभाग एवं न्याय विभाग का प्रमुख था।

अकबर की भांति विभिन्न लोगों में कार्य बांटने के स्थान पर जहांगीर ने कार्य को साम्राज्य के राजनीतिक

विभाजनों की दृष्टि से बांटा। शाहजहां के इक्तीस वर्षों के शासन काल में छह स्थायी दीवान हुए। इनमें में सत्ताईस वर्ष तीन दीवानों के कार्यकाल के थे– अफजल खान, इस्लाम खान और सादुल्ला खान। वित्त मंत्री की हैसियत से खजाने में आने और उससे बाहर जाने वाली पाई–पाई दाम पर उसकी निगरानी रहती थी। इस प्रकार दीवान–वजीर का तिहरा दायित्व उसे केन्द्रीय सरकार के तीनों विभागों और प्रान्तीय प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र से जोड़े रखता था।

वकील के मातहल जिन अधिकारियों का उल्लेख अबुल फजल करता है, उसमें मीर बक्शी ही सबसे अधिक शक्तिशाली था। वह नाममात्र के लिए वकील के अधीन था। उसका सम्बन्ध दिल्ली के सुल्तानों की आरिज–ए–मुमालिक से था। किसी मुसलामान राजा के लिए केवल इतना ही पर्याप्त नहीं था कि वह स्वयं एक सच्चा मुसलमान हो अपितु यह भी कि वह इस्लामी कानून की मर्यादा को भी बनाए रखे। इस्लाम के आरम्भिक इतिहास में जो मुसलमान राजा हुए थे, मुख्यतः योद्धा होते थे, अतः उचित यही समझा गया कि राज्य के धार्मिक मामलों की देखभाल करने के लिए अलग से एक विभाग बनाना जाए।

मुगल साम्राज्य में बड़ी संख्या में कारखाने थे जो न केवल राजधानी अपितु साम्राज्य भर में फैले हुए थे। इन कारखानों के प्रबन्ध, संगठन एवं उन्हें सुचारू रूप से चलाने का दायित्व मीर सामान पर होता था। इस कारण साम्राज्य के उच्चधिकारियों में उसका महत्वपूर्ण स्थान था। प्रशासन की दृष्टि से प्रत्येक सूबे को अनेक इकाइयों में बांटा गया था। इन इकाइयों को सरकार कहा जाता था। प्रत्येक सरकार को पुनः परगना या महल में विभाजित किया गया था। इन परगनों में जिले या दस्तूर बनाए गए थे। ये प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थे। परगनों के अन्तर्गत गांव होते थे जिन्हें मावदा या दीह कहा जाता था।

अकबर के समय में सूबे के प्रमुख को सिपहसालार कहा जाता था। बाद में उन्हें निजाम कहा जाने लगा। सिपहसालार बादशाह का उप–रीजेन्ट होता था। अलग–अलग प्रान्तों में वहां की स्थिति और आवश्यकता के अनुसार अलग–अलग प्रकार के गवर्नर होते थे। उसकी नियुक्ति सम्राट की आज्ञा से होती थी जिसे फरमान–ए–साबती कहते थे। सामान्य गवर्नर के पद की कोई निश्चित अवधि नहीं होती थी और अधिकतर तो प्रशासनिक आवश्यकता से ही इस बात का निर्धारण होता था कि गवर्नर की नियुक्ति की जाए अथवा नहीं।

प्रान्तीय दीवान का कार्य महलों से राजस्व एकत्र करना, रोकड़ बही और रसीदों के हिसाब का लेखा–जोखा रखना, दान की भूमि की देखभाल करना, प्रान्तीय अफसरों का वेतन तय करना और बांटना और जागीरों के वित्तीय पक्षों की देखभाल करना था। इसके अतिरिक्त उसे सम्राट की ओर से इस बात के भी निर्देश थे कि वह कृषि के समर्थन को बढ़ावा दे, खजानों के काम–काज पर नजर रखे, अधिकारियों द्वारा लगाए गए करों पर निगरानी रखें, अमीलों की गतिविधियों पर नजर रखे आदि। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय बक्शी वाकिया निगार भी होता था। इस रूप में उसका कार्य था अपने प्रान्त में होने वाली सभी बातों की जानकारी केन्द्र को देना। इसके लिए वह परगनों, निजाम और दीवान के दफ्तरों और न्यायालयों में, अर्थात् प्रशासन के लगभग प्रत्येक विभाग में, अपने आदमी तैनात करता था।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद अनेक क्षेत्रों में फौजदार का पद वंशानुगत हो गया। जूनागढ़ के फौजदारों से सम्बन्धित एक अध्ययन में जहिरूद्दीन मालिक ने दर्शाया है कि किस प्रकार साम्राज्य के उत्तरी भाग में फौजदर का अधिकार क्षेत्र सरकार के मूल पद से कहीं अधिक हो गया था। फौजदार के बाद सरकार में अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी अमील या अमलुजार होता था। उसका मुख्य दायित्व उपसंभाग के सम्पूर्ण राजस्व विभाग का सुचारू कार्य–सम्पादन सुनिश्चित करना था। वह प्रान्तीय दीवान की प्रत्यक्ष निगरानी एवं निर्देशों के अन्तर्गत कार्य करता था। अमील की जिम्मेदारी यह भी थी कि वह खालसा भूमि का राजस्व एकत्र करे। खजाने में जमा की जाने वाली धनराशि का दायित्व भी उसी का था। सयूरगल भूमि का भी निरीक्षण करना होता था और उसकी प्रतियां पंजीयन के कार्यालय में भेजनी होती थी ताकि वहां रखी प्रति से उसका मिलान किया जा सके। कोतवाल के न्यायिक दायित्व मात्र निभाता था उसके निगम सम्बन्धी दायित्वों को नहीं। यद्यपि अमील की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करती थी, वह सूबेदार की निगरानी में कार्य करता था और कर्त्तव्य–च्युति के अपराध में सूबेदार उसे अपदस्थ भी कर सकता था। इस प्रकार अमील मुगल प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता था। वह ऐसा साधान था ''जिसके माध्यम से केन्द्रीय शासन लोगों की नब्ज खोल सकती थी।''

सरकार के नीचे होता था परगना जो अनेक दृष्टियों से मुगल प्रशासन का सर्वाधिक प्रशासनिक उपसंभाग था। शेरशाह के समय से परगना में तीन महत्त्वपूर्ण अधिकारी होते आए थे, शिकदार, अमील या अमीन और कानूनगो। इनकी सहायता के लिए खजानों के बहुत कर्मचारी, बाबू, पटवारी और चपरासी होते थे। अमील के वही दायित्व होते थे जो सरकार में अमलगुजार के होते थे। राजस्व निर्धारण एवं वसूली के अपने कार्य में उसे किसानों से सीधा सम्पर्क करना पड़ता था। अमील शब्द मुंशी या अमीन का पर्याय था और धीरे–धीरे मुगल काल में इसका प्रचलन बन्द हो गया। कानूनगो का पद भी पुराना था जो पहले ही परगने से जुड़ा हुआ था। अबुल फजल का कहना है कि कानूनगो किसानों का आश्रयदाता था क्योंकि वही फसलों और लोगों इत्यादि का पूरा विवरण रखता था।

2.3 सारांश

इसे हम मुगलकालीन शासकों की प्रशासनिक दक्षता ही कहेंगे कि उस समय एक मजबूत मुद्रा प्रणाली बादशाहों ने विकसित कर ली थी। कुछ विद्वानों का मानना है कि मध्यकालीन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन, मात्र उपभोग तक ही सीमित था और यह विनियम के लिए नहीं था तथा मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था, ब्रिटिश शासकों की देन है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। भारत में मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था का प्रादुर्भाव, मुगलों के आगमन के बहुत साल पहले पहले ही हो चुका था। मुगलों ने तो इसे मात्र विकसित करने का कार्य ही किया था। इसके अलावा तथ्य यह भी है कि मुगल काल के दौरान शहजादों एवं उमरा–वर्ग में वाणिज्य प्रवृत्ति बढ़ी और ये लोग व्यापार तथा वाणिज्य में भी रूचि लेने लगे। कहा जा सकता है कि मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था का विकास, मुगलों की राजस्व नीति का ही परिणाम था।

2.4 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. **भारतीय प्रशासन** :– अवस्थी एण्ड अवस्थी लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. **भारतीय प्रशासन** :– प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. **भारत में लोक प्रशासन**:– बाबूलाल फाड़िया, साहित्य भवन, आगरा।
4. **भारत का प्रशासन** :– होशियार सिंह।

2.5 बोध प्रश्न

1. मुगल काल में निम्नलिखित में से किसके अधिकार असीमित थे?
   (i) वजीर–ए–तनफीज
   (ii) वजीर–ए–तग्फवीज
   (iii) मीर–बक्शी
   (iv) मीर–ए–सामां
2. मुगलकाल में दीवान कौन था?
   (i) मुख्य पुलिस अधिकारी
   (ii) मुख्य न्यायाधीश
   (iii) प्रधानमंत्री
   (iv) वित मंत्री
3. मुगलकाल में मंत्रिपरिषद् को क्या कहा जाता था?
   (i) शिकदार

(ii) आमिल

(iii) विजारत

(iv) मुहतसिब

4. अकबर के शासन काल में भू–राजस्व सुधारों के लिए कौन उत्तरदायी था?

(i) बीरबल

(ii) टोडरमल

(iii) जयसिंह

(iv) बिहारीमल

लघुउत्तरीय प्रश्नः–

1. मुगल कालीन प्रशासनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं बताएं।
2. मुगल कालीन शासन में राजा या बादशाह के क्या अधिकार थे।
3. मुगल कालीन प्रान्तीय प्रशासन का वर्णन कीजिए।
4. मुगल कालीन मनसबदारी प्रथा का वर्णन करिए।

दीर्घउत्तरीय प्रश्नः–

1. मुगल कालीन साम्राज्य के केन्द्रीय शासन पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
2. मुगल कालीन प्रान्तीय प्रशासन तथा स्थानीय प्रशासन का विस्तृत वर्णन करिए।

इकाई—3 ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक प्रणाली

3.3 सारांश

3.4 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

3.5 लघु उत्तरीय प्रश्न

3.6 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

3.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य ब्रिटिश कालीन प्रशासनिक प्रणाली के विकास उसकी प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना है।
- हम ब्रिटिश शासन काल में भारतीय शासन और प्रशासन के सन्दर्भ में समय—समय पर बनाये गये अधिनियमों के द्वारा भारत में प्रशासनिक व्यवस्था का किस प्रकार विकास हुआ और उस प्रशासनिक व्यवस्था में भारतीयों की क्या स्थिति थी के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिश प्रशासन का प्रारम्भ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सन् 1600 ई0 में स्थापना के साथ हुआ। प्रारम्भ में इसका उद्देश्य व्यापार करना था और बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास के बन्दरगाहों से होकर शेष भारत से इसका सम्पर्क रहता था। धीरे—धीरे कम्पनी की प्रादेशिक महत्वकांक्षा प्रबल होती गयी और शीघ्र ही वह भारत में एक प्रमुख यूरोपीय शक्ति बन गयी। मुगलों के पतन के तुरन्त बाद ही अंग्रेजों का प्रभुत्व भारत पर स्थापित नही हो गया था वरन् यह धीरे—धीरे क्रमबद्ध तरीके से हुआ था। अंग्रेजो से पूर्व कुछ और यूरोपियन शक्तियों ने भी भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया था। जिनमें पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी प्रमुख है, किन्तु इन सभी में अंग्रेज ज्यादा ताकतवार और चालाक थे जिन्होंने अपनी कुटिल बुद्धि के द्वारा धीरे—धीरे भारत पर राजनीतिक सत्ता स्थापित करना शुरू कर दिया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुटिल प्रयास शीघ्र ही रंग दिखाने लगे जब कम्पनी को कुछ सफलता मिलती दिखी तो ब्रिटिश शासन भी भारतीय प्रशासन में रूचि दिखाने लगा दरअसल उस समय तक ब्रिटेन विश्व भर में औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का एक प्रतीक बन चुका था। सन् 1773 से 1858 ई0 तक का युग ऐसा रहा जिसे हम 'दोहरी सरकार का काल' कहते है। क्योंकि इस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ—साथ ब्रिटेन की संसद भी भारतीय प्रशासन में रूचि ले रही थी।

भारत की शासनिक व्यवस्था में घुसपैठ करने के कुटिल उद्देश्य से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सबसे पहले बंगाल में दीवानी अधिकार प्राप्त किये। जिसके तहत वह एक मुश्त धनराशि मुलग सम्राट को देती थी और बदले में वह राजस्व वसूली करती थी। इस समय से लेकर सन् 1857 तक कम्पनी ने अपने आप को एक ऐसी स्थिति में पाया जिसमें मुगल कालीन प्रशासन उसके अपने साम्राज्यवादी उद्देश्य के अनुरूप नही था और अंग्रेजी प्रशासन की विशेषताएँ भारत जैसे देश में उत्पन्न करना एक कठिन कार्य था। सन् 1858 से 1947 तक क्राउन की सरकार ने संसदीय संस्थाओं को संवैधानिक सीमाओं में रखते हुए विकसित करने के अनेक प्रयत्न किये जिसके फलस्वरूप भारतीय प्रशासन को भी राजनीतिक और आर्थिक सुधारों की दृष्टि से एक नया प्रयोग—क्षेत्र माना जाने लगा।

1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट से प्रारम्भ होने वाले संवैधानिक विकास के चरण जिन महत्वपूर्ण वर्षों से गुजरे हैं, उनमें 1813, 1833, 1853, 158, 1861, 1892, 1909, 1919 और 1935 महत्वपूर्ण हैं। इन अधिनियमों ने भारत को

संसदीय संस्थाये दी जिनके आधार पर भारत का वर्तमान संविधान बना है।

ब्रिटिश शासन काल के दौरान दोनो विश्वयुद्धों के बीच का युग जिसे गांधी वादी युग कहते हैं के दौरान संवैधानिक विकास हेतु प्रस्तुत होने वाला भारतीय अधिनियम 1935 अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा जिसमें केन्द्र में द्वैध शासन, प्रान्तों में स्वायत्ता तथा संघवाद के प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये थे। स्वतन्त्र होने तथा 26 जनवरी 1950 को गणराज्य बनने तक यही अधिनियम लागू रहा। प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से यह अधिनियम इतना महत्वपूर्ण था कि स्वतन्त्र भारत के नवनिर्मित संविधान का अधिकांश भाग इसी अधिनियम से लिया गया है। भारत में ब्रिटिश शासन काल के दौरान प्रशासनिक विकास अत्यन्त तीव्र गति से हुआ और इसने इतनी अधिक दक्षता प्राप्त कर ली थी कि वर्तमान भारत का प्रशासनिक ढांचा उसी दौरान रखी गयी नींव पर खड़ा है।

3.2 ब्रिटिशकालीन प्रशासन

भारत में ब्रिटिश शासनकाल में प्रशासनिक विकास का अध्ययन निम्नलिखित चरणों में किया जा सकता है :

1. 1858 के पूर्व प्रशासनिक व्यवस्था
2. 1858–1919 तक प्रशासनिक व्यवस्था
3. 1917–1937 तक प्रशासनिक व्यवस्था
4. 1937–1947 तक प्रशानिक व्यवस्था।

1. भारतीय सवैधानिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के विकास में 1773 के अधिनियम का विशेष महत्त्व है। इस अधिनियम के पूर्व भारत में कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी की शासन–शक्तियाँ तीन स्थानों बम्बई, बंगाल और मद्रास में केन्द्रित थीं। प्रत्येक का शासन गवर्नर–इन–काउन्सिल द्वारा किया जाता था जो कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स (इंग्लैण्ड) के प्रति उत्तरदायी थी। गवर्नर तथा परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति संचालक–मण्डल द्वारा होती थी। प्रारम्भ में कम्पनी मनमानी तरीके से प्रशासन का संचालन करती थी। परिणामस्वरूप कम्पनी के शासन की वैधानिक और व्यावहारिक आधार पर आलोचनाएं हुईं। बाध्य होकर ब्रिटिश संसद ने कम्पनी को नियन्त्रित करने की दृष्टि से अनेक विधेयक पारित किये। इस दिशा में सन् 1773 के रेगूलेटिंग एक्ट का निर्माण भारत के संवैधानिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण मंजिल है। इस कानून में पहली बार भारतीय जनता को सुशासन प्रदान करने के उद्देश्य से भारत पर इंग्लैण्ड के संरक्षण की घोषणा की गयी और इसी के साथ भारतीय मामलों में संसद का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप आरम्भ हुआ। इस कानून के द्वारा ब्रिटिश संसद ने, कम्पनी के शासन में हस्तक्षेप कर कार्यपालिका और विधायिका सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। बम्बई और मद्रास की प्रेसीडेंसी को कलकत्ता प्रेसीडेंसी के अधीन कर दिया गया। जिसका प्रशासन गवर्नर–जनरल सहित चार पार्षदों को सौंपा गया। साथ ही इस अधिनियम के द्वारा भारतीय प्रशासन का दायित्व कम्पनी और ब्रिटिश सरकार के बीच बंट गया। इस व्यवस्था में कभी–कभी गवर्नर–जनरल अपनी परिषद् के सामने शक्तिहीन सिद्ध होता था जबकि अनेक बार परिषद् को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निष्क्रिय बना दिया जाता था। इसी आधार पर भारतीय संवैधानिक सुधार रिपोर्ट (1918) ने 1773 के अधिनियम को प्रशासनिक यंत्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का हननकर्त्ता बताया। इस सम्बन्ध में पायली ने सत्य ही कहा है कि ''भारत में एक अत्यन्त केन्द्रीकृत शासन का आविर्भाव इन्हीं अधिनियमों का फल था'' 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम ने यह स्पष्ट कर दिया कि कम्पनी का प्रशासन एवं नीतियाँ असन्तोषजनक रही थीं। फलतः भारत सरकार का संचालन कम्पनी से क्राउन ने ले लिया।
2. 1858 के अधिनियम का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर ब्रिटिश संसद के शासन की स्थापना हो गयी। समस्त संवैधानिक, प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियाँ भारत–सचिव तथा उसकी परिषद् में केन्द्रित हो गयी। भारत में सत्ता का केन्द्रीकरण गवर्नर–जनरल तथा उसकी परिषद् में निहित हो गया। इसका प्रयोग अनेक अधिकारियों द्वारा किया जाने लगा। इस प्रकार प्रशासन नौकरशाही में परिणत हो गया। महारानी विक्टोरिया के घोषणा–पत्र का भारत के राष्ट्रीय एवं वैधानिक विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह घोषणा–पत्र लगभग 60 वर्षों तक अर्थात् 1917 तक ब्रिटिश सरकार की भारत सम्बन्धी नीति का मूल आधार बना रहा। इसने भारत सरकार को शन्ति–व्यवस्था स्थापित करने में बहुमूल्य

सहायता दी और उन सिद्धान्तों को बहुत कुछ निश्चित किया जिनके अनुसार भारत का शासन प्रबन्ध होने को था। यद्यपि उसके कतिपय महत्त्वपूर्ण उपबन्धों पर आचरण नहीं हुआ, फिर भी वह पर्याप्त समय तक भारत में ब्रिटिश नीति का आदर्श माना जाता रहा।

3. यह काल प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस समय में कुछ ऐसे परिवर्तन किये गये जिनसे भारतीयों की भारतीय प्रशासन में भागीदारी बढ़ी और स्वशासन की दिशा में आगे कदम उठाये गये। प्रान्तों को स्वायत्तता प्रदान की गयी। 1919 अधिनियम ने प्रान्तों में द्वैध–शासन की स्थापना की। इस प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही और लोकतन्त्र को परस्पर मिलाया गया। एकात्मक सरकार होते हुए भी केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के कार्यक्षेत्र निश्चित कर दिये गये। द्वैध–शासन के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकार के दो भाग हो गये। प्रान्तीय विषयों का संरक्षित और हस्तान्तरित विषयों में विभाजन किया गया। गवर्नर को असाधारण शक्तियाँ सौंपी गयीं। प्रान्तों को पहले की तुलना में अधिक अधिकार दिये गये। केन्द्र की कार्यपालिका परिषद् में भारतीय को स्थान दिया गया। इस अधिनियम द्वारा स्थानीय स्वशासन प्रान्तीय तथा हस्तान्तरित विषय बन गया, जिसे भारतीय मंत्री के नियन्त्रण में रखा गया। इस दिशा में अनेक अधिनियम पारित किये गये।

4. 1935 के भारत सरकार अधिनियम का भारत का संवैधानिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण और स्थायी स्थान है। कूपलैण्ड के अनुसार 1935 का अधिनियम ''रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक महान् सफलता था।'' इस अधिनियम ने भारत में संघात्मक व्यवस्था का सूत्रपात किया। साथ में प्रान्तों में लागू किये गये द्वैध–शासन को अब केन्द्रीय स्तर पर लागू करने और आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना करने का प्रावधान किया गया। संघीय कार्यपालिका, संघीय विधानमण्डलय तथा संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी। प्रान्तों में स्वायत्त सरकार तथा प्रान्तीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति समस्त प्रान्तीय विषयों तक स्थापित हो गयी। प्रान्तीय कार्यपालिका, विधानमण्डल तथा न्यायपालिका की स्थापना की गयी।

ब्रिटिश कालीन प्रशासनिक प्रणाली की विशेषताएं

(1) **केन्द्रीय सचिवालय का विकासः**— प्रशासनिक संस्थाओं की भाँति सचिवालय भी ब्रिटिश–शासनकाल की देन है। भारतीय सचिवालय स्वजातिक है। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केन्द्रीय सचिवालय की विशेष भूमिका थी। शासन में बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन केन्द्रीय सचिवालय को गठित किया गया, जिसमें 1833 के चार्टर अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक मितव्ययता की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किये गये। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि राजस्व और वित्त विभागों को मिलाकर एक विभाग बना दिया गया। 1843, 1855 और 1862 से 1919 तक सचिवालय में विभागों का गठन–पुनर्गठन होता रहा और अनेक नये विभागों का निर्माण हुआ। 1919 से 1947 तक का युग केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

लॉर्ड कार्नवालिस ने सचिवालय के पुनर्गठन और शक्तिशाली बनाने की दिशा में कुछ पहल की। उसका प्रमुख योगदान महामंत्री के पद का सृजन था। इस पदाधिकारी को बाद में प्रमुख सचिव की संज्ञा दी गयी। इसके हाथ में समस्त शक्तियाँ तथा उत्तरदायित्व थे। लॉर्ड वैलेजली का भी सचिवालय के विकास में काफी योगदान रहा। उसकी योजना के अन्तर्गत सचिवालय का कार्य काफी मात्रा में बढ़ा और साथ में उत्तरदायित्व में भी वृद्धि हुई। अठारहवीं सदी के अन्त में सरकार में गवर्नर–जनरल और सचिवालय के चार विभाग थे। प्रत्येक विभाग एक सचिव के अधीन था। 1919 के पूर्व भारत सरकार में गवर्नर–जनरल और उसकी कौंसिल में सात सदस्य तथा नौ सचिवालयीय विभाग थे। सचिवालय के संगठन और कार्य–पद्धति के विषय में बाद के वर्षों में इंचकेप समिति, व्हीलर समिति और मैक्सवेल समिति ने केन्द्रीय सचिवालय के सुधार के लिए और भी सुझाव प्रस्तुत किये। द्वितीय महायुद्ध के कारण जब स्थिति नाजुक हो गयी तो 1945 में सचिवालय का पुनगर्ठन आवश्यक समझा गया। इसके पूर्व 1941 में नागरिक सुरक्षा, सूचना और प्रसारण तथा भारतीय समुद्रपारीय विभाग स्थापित किये जा चुके थे। युद्ध के कारण सुरक्षा–समन्वय का नया विभाग स्थापित हुआ और युद्ध–आपूर्ति मण्डल गठित किया गया। 1942 में खाद्य–विभाग स्थापित हुआ और उद्योग एवं नागरिक आपूर्ति को पुनः एक कर दिया गया। 1944 में योजना तथा विकास नामक विभाग स्थापित किया गया। युद्ध के बाद यद्यपि सचिवालय में और भी परिवर्तन किये गये; किन्तु सबसे महत्वपूर्ण

परिवर्तन शिक्षा, स्वास्थ्य और कृषि–मन्त्रालयों का विभाजन था। श्रम–मन्त्रालय का जन्म भी इसी समय हुआ। 15 अगस्त, 1947 को सत्ता–हस्तान्तरण के समय केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे।

(2) **वित्तीय–प्रशासनः**– भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में वित्त–प्रशासन घोर अनियमितताओं से ग्रस्त था। 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा यह निश्चित किया गया कि किसी प्रान्तीय सरकार को नये पद अथवा नये वेतन या भत्ते की स्वीकृति का अधिकार नहीं होगा, जब तक कि गवर्नर–जनरल की पूर्व–स्वीकृति प्राप्त न हो जाये। 1833 से 1870 ई0 तक प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करती रहीं। उन्हें कर लगाने अथवा उसे खर्च करने का अधिकार नहीं था।

(3) **न्याय–प्रशासनः**– न्याय–प्रशासन भारतीय और ब्रिटिश प्रणालियों तथा संस्थाओं का सम्मिश्रण था। 1857 विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने न्याय–व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया। अंग्रेजों ने मुगलकालीन परम्पराओं को सुरक्षित रखते हुए उसमें न्याय के अंग्रेजी सिद्धान्तों को गूंथने की कोशिश की। अंग्रेजों की न्याय–व्यवस्था अच्छी थी। न्याय का कार्य संघीय न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों के हाथों में था। 1935 के अधिनियम के आधार पर संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी। न्यायालयों को दीवानी, आपराधिक, वसीयती, वैवाहिक क्षेत्राधिकार था। इनको मौलिक एंव अपील दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त थे।

(4) **स्थानीय शासन का विकासः**– भारत में वर्तमान स्थानीय शासन–संस्थाओं की रचना और विकास अंग्रेजी शासन की देन है। स्थानीय शासन का आरम्भ प्रेसीडेन्सी नगरों में करते हुए 1687 ई0 में मद्रास के निगम की स्थापना की गयी। 1726 ई0 में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सी नगरों में मेयरों की अदालतें स्थापित करने का अधिकार दिया गया। 1850 में पारित अधिनियम के द्वारा बड़े नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की गयी। लॉर्ड रिपन का कार्यकाल 'भारत में स्थानीय स्वराज्य का स्वर्णकाल' था। उसके शासनकाल से स्थानीय संस्थाओं को काफी बढ़ावा मिला, उन्हें लोकतान्त्रिक बनाया गया तथा उनके कार्यों एवं शक्तियों में वृद्धि की गयी। 1919 तथा 1935 के अधिनियमों के द्वारा भी स्थानीय संस्थाओं के विकास तथा प्रजातन्त्रीकरण के कार्य को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला।

(5) **लोक–सेवा का विकासः**– ब्रिटिश शासन में भारत की प्रशासनिक सेवाएँ अधिक विकसित थीं। मुगल–साम्राज्य के पतन के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन ने लूट–प्रथा को प्रोत्साहित किया। कम्पनी की वाणिज्यिक नौकरियों की प्रकृति योग्यता–आधारित प्रशासकीय सेवाओं के विकास में एक भारी बाधा सिद्ध हुई। इसके बावजूद हेस्टिंग्ज तथा कार्नवालिस जैसे गवर्नर जनरलों ने भू–राजस्व की वसूली तथा शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना के क्षेत्र में लोक–सेवाओं की आधारशिला रखकर महत्वपूर्ण कार्य किया। 1781 की केन्द्रीकरण योजना के अनुसार राजस्व–मण्डल की स्थापना हुई। 1787 में एक अन्य योजना के अन्तर्गत जिलाधीश, मजिस्ट्रेसी तथा न्याय प्रशासन का कार्य एकीकृत किया गया।

लॉर्ड कार्नवालिस (1785–93) ने भारत की प्रशासकीय सेवा में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। आगे चलकर लॉर्ड वैलेजली ने अपने प्रशासकों का बड़ी सावधानी से चयन कर उन्हें फोर्ट विलियम कॉलेज में प्रशिक्षण हेतु भेजा। प्रशिक्षण के लिए 1813 में इंग्लैण्ड में हेलिबरी में एक कॉलेज की स्थापना की गयी। 1833 में संसद द्वारा कम्पनी को स्वीकृत किये गये चार्टर में यह व्यवस्था की गयी कि इसके सभी कर्मचारियों की भर्ती समस्त व्यक्तियों के लिए समान रूप से खुली प्रतियोगिता पद्धति के आधार पर की जायेगी। भारतीय लोक–सेवाओं के इतिहास में 1854 सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जबकि लॉर्ड मेकॉले की अध्यक्षता में 'एक समिति' का गठन हुआ। इस समिति ने आई0सी0एस0 के लिए जो सिफारिशें की थीं वे न्यूनाधिक रूप में आज भी भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के गठन और कार्यप्रणाली की आधारशिला हैं। 1858 में कम्पनी के शासन के स्थान पर ब्रिटिश क्राउन की सरकार की स्थापना हुई। 1886 में भारत के वायसराय लॉर्ड डफरिन ने इस विषय पर विचार करने के लिए चार्ल्स एचिसन की अध्यक्षता में 'एक आयोग' स्थापित किया। आयोग ने सुझाव दिया कि कवेनेण्टेड तथा अकवेनेण्टेड सेवाओं के अन्तर को समाप्त कर इनके स्थान पर सामान्य सेवा को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाय–भारतीय नागरिक सेवा, प्रान्तीय सेवा और अधीनस्थ सेवा।

3.3 सारांश

भारत के अधिनियम का प्रमुख स्त्रोत 1935 का अधिनियम है। जिसमें संघीय शासन प्रणाली की नीवं रखी गई। इस अधिनियम में केन्द्र और राज्य के बीच शक्तियों का बँटवारा किया गया। मताधिकार का विस्तार हुआ। इस अधिनियम की यह विशेषता है कि भारतीय संविधान में इसे यथावत स्थान दिया गया।

3.4 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय शासन अधिनियम की स्थापना कब हुई।

(a) 1750 (b) 1935 (c) 1940 (d) 1936

2. भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत प्रांतो में द्वैध शासन को समाप्त करते हुए किस तरह के शासन की स्थापना की गई?

(a) द्विसदनीय शासन (b) केन्द्रीय शासन

(c) स्वशासन (d) प्रांतीय शासन

3. ब्रिटिश संसद द्वारा रेग्यूलेटिंग एक्ट कब पारित किया था।

(a) 1750 ई0 (b) 1773 ई0 (c) 1857 ई0 (d) 1940 ई0

4. भारत में ब्रिटिश शासनकाल को कितने चरणों में विभाजित किया गया है?

(a) एक (b) दो (c) तीन (d) चार

5. ब्रिटिश सरकार ने सेना के पुर्नगठन के लिए कौन सा कमीशन नियुक्त किया?

(a) स्ट्रेची कमीशन (b) पील कमीशन

(c) फ्रेजर कमीशन (d) हण्टर कमीशन

3.5 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. 1935 के अधिनियम पर टिप्पणी लिखे।

2. 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के प्रमुख योगदान का वर्णन कीजिए।

3. रेग्यूलेटिंग एक्ट पर टिप्पणी करें।

4. ब्रिटिश कालीन न्याय एवं कानूनी व्यवस्था कैसी थी?

5. भारत में ब्रिटिश प्रशासन के तीन स्तम्भों के नाम क्या है?

6. ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

3.6 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. ब्रिटिशकालीन दोहरी शासन व्यवस्था का बंगाल की जनता पर क्या प्रभाव पड़ा?
2. ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक नीतियों तथा उनके प्रभवों का वर्णन करें।

इकाई–4 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक सुधार

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भारत शासन अधिनियम, 1935

4.3 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक सुधार

4.4 सारांश

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

4.7 लघुउत्तरीय प्रश्न

4.8 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

4.0 उद्देश्य

- ब्रिटिश काल में बनाये गये अधिनियम द्वारा भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का किस प्रकार विकास हुआ के बारे जानकारी प्राप्त करेंगे।
- हमें 1935 ई0 के भारतीय शासन अधिनियम की प्रमुख बातों का पता चलेगा।

4.1 प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिश प्रशासन का प्रारम्भ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के साथ हुआ। धीरे–धीरे ब्रिटिश शासन भारत के प्रशासनिक कार्यों में भी रूचि रखने लगे। इसी सम्बन्ध में ब्रिटिश काल में 1935 के शासन अधिनियम ने भारत में प्रान्तीय स्वायतता की स्थापना की। भारतीय संविधान की संघीय प्रणाली की जड़ में 1935 के शासन अधिनियम को आधार माना जाता है।

4.2 भारत शासन अधिनियम, 1935

1935 के भारत सरकार अधिनियम के द्वारा द्वैध शासन (1919 के अधिनियम द्वारा लागू) को समाप्त कर प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना की है। व्हीलर समिति मे इस परिवर्तन के प्रभाव की गणना केन्द्रीय सरकार के कार्यभार पर की। इसने पाया कि इससे भारत सरकार के केन्द्रीय विभागों के कार्यों में कोई फर्क नहीं पड़ा। अनेक विभागों यथा प्रतिरक्षा रेलवे और कार्मिक विभाग आदि तो पूर्णतया अप्रभावित रहे। राजनीतिक विभागों के कार्यों में वृद्धि हुई क्योंकि सारे रजवाड़े सीधे भारत सरकार के सम्पर्क में आ गये।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 के पूर्व गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में प्रशासनिक अनुभवों में महाबली वरिष्ठ सरकारी पदाधिकारी होते थे। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर जनरल को सलाह देने के लिए मन्त्रिपरिषद् का प्रावधान किया गया। मन्त्री के आगमन के पश्चात् सरकार ने मन्त्री और सचिव के सम्बन्धों को समझने के लिए और इसकी लोक प्रशासनिक मशीनरी पर परिणामी प्रभाव को जानने के लिए समिति की स्थापना की जिसने 1937 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

मैक्सवेल समिति ने 1935 के अधिनियम के आलोक में लोक प्रशासन को तीन प्रस्तावों के प्रभाव से प्रभावित होते पाया। प्रथम, मन्त्री, जो समाज के मध्य से चुनकर परिषद् में आयेंगे, उन्हें प्रशासनिक अनुभव नहीं के बराबर होगा एवं राजनीतिक कार्यों की तुलना में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के लिए कम समय होगा। दूसरे, उत्तरदायी सरकार की पद्धति के अन्तर्गत मन्त्री समय–समय पर परिवर्तित होते रहेंगे। तीसरे, सरकार की नीति के

क्रियान्वयन की मशीनरी की अन्य प्रजातान्त्रिक देशों की भाँति एक पृथक और सतत् उपस्थिति होगी जो स्वयं में स्वतन्त्र होगी।

मैक्सवेल समिति ने इंगित किया कि ''अपने प्रशासनिक विकल्प के लिए सामूहिक मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त एक विभाग का वैयक्तिक उत्तरदायित्व है; कोई दूसरा विकल्प विभागीय सक्षमता अथवा विभागीय अनुशासन के लिए उपयोगी नहीं हो सकता है।''

चूँकि मन्त्रियों का संसदीय उत्तरदायित्व होगा, अतः उन्हें प्रशासनिक परेशानियों से स्वतन्त्र रखना उचित होगा। सचिव को सामान्यतया निम्नलिखित विषयों को ही मन्त्री के समक्ष उपस्थित करना चाहिए। (1) मन्त्रिपरिषद् के कार्य, (2) राजनीतिक प्रभाव वाले कार्य, (3) संसदीय कार्य, (4) संरक्षण, (5) अन्य कोई कार्य जिस पर सचिव मन्त्री का विचार जानना आवश्यक समझे।

जब तक मन्त्री और सचिव का सम्बन्ध पारस्परिक विश्वास से भरा नहीं होगा तब तक प्रशासनिक तन्त्र सुचारू रूप से कार्य नहीं कर सकता है। मन्त्री विभाग का राजनीतिक प्रमुख और सचिव उसका प्रशासकीय प्रमुख होता है।

भारतीय संविधान की संघीय प्रणाली की जड़ 1935 की भारत सरकार अधिनियम में है यदि हम भारत के संवैधानिक इतिहास का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट होता है कि केन्द्र और प्रान्तों के बीच अधिकार विभाजन की जड़ 1919 के भारत सरकार अधिनियम में थी जिसकी प्रमुख विशेषता द्वैध शासन प्रणाली थी। भारत सरकार अधिनियम 1935 का भारत के राजनीतिक विकास में 3 प्रमुख योगदान माना जाता है।

1. प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी सरकारों का गठन
2. केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों का बंटवारा
3. संघीय न्यायालय का गठन – महासंघ बनने की दिशा में एक आश्वासन। इस अधिनियम की 451 धाराओं में भावी भारतीय संविधान के लिए एक प्रारूप प्रदान किया।

हमारे संविधान ने एक ऐसी संसदीय प्रणाली को अपनाया है। जो ब्रिटिश संसदीय प्रणाली पर आधारित है। राज्य का एक नाममात्र का प्रधान, सामूहिक संसदीय उत्तरदायित्व वाला एक मंत्रिमण्डल, स्वतन्त्र न्याय प्रणाली आदि इस संसदीय प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं हैं। इसलिए भारतीय संवैधानिक विकास के क्रम में इस अधिनियम को भारतीय शासन व्यवस्था का आधार स्तम्भ कहा जाता है।

इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. **परिसंघीय प्रणाली की स्थापनाः**– इस अधिनियम की महत्त्वपूर्ण देन सम्पूर्ण भारत के लिए ''संघात्मक'' व्यवस्था की स्थापना करना था। इसके पहले भारत में ऐकिक प्रणाली थी। अब प्रान्तों, रियासतों को मिलाकर एक संघात्मक सरकार की स्थापना की गयी, लेकिन देशी रियासतों की अनिच्छा से परिसंघ की व्यवस्था को कारगर रूप नहीं मिल सका।
2. प्रान्तों में द्वैध शासन की पद्धति को अब केन्द्र में भी लागू कर दिया गया।
3. इसमें संघीय कार्यपालिका, संघीय विधान मण्डल (इसमें दो सदन परिसंघ विधान सभा एवं राज्य परिषद्) एवं स्वतंत्र संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी। यही ढांचा प्रान्तों में भी स्थापित किया गया।
4. केन्द्र की व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानून को गवर्नर जनरल एवं सम्राट दोनों को वीटो करने की शक्ति थी।
5. इसमें विषयों का तीन वर्णों में वितरण किया गया है–
    1. **केन्द्र सरकार के विषय**– विदेश, रक्षा, करेंसी, मुद्रा सेवा, जनगणना।
    2. **प्रान्तीय सरकार के विषय**– पुलिस, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रान्तीय लोक सेवा।
    3. **समवर्ती सूची के विषय**– दण्ड विधि और प्रक्रिया, सिविल प्रक्रिया और विवाह विच्छेद आदि।

इस अधिनियम की महत्ता यह है कि आज भी भारतीय संविधान में इस अधिनियम की विशेषतओं को यथावत

स्थान दिया गया है। जैसे परिसंघीय व्यवस्था एवं विषयों का वितरण।

इसके बावजूद उपनिवेशित की विसंगति को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। जैसे डी0डी0 बसु के अनुसार, ''1935 के अधिनियम में मुसलमानों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व तो था ही, सिखों के लिए, यूरोपीय लोगों के लिए, ईसाइयों के लिए और एग्लो–इंडियन लोगों के लिए भी पृथक प्रतिनिधित्व था। इसके कारण राष्ट्रीय एकता के निर्माण में गम्भीर बाधाएँ उपस्थित हुईं। मुसलमानों के पृथक राज्य के लिए विभाजन हो जाने के बाद भी भावी संविधान के निर्माता इस कठिनाई को पार नहीं कर सके।''

4.3 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक सुधार

भारत सरकार अधिनियम, 1935 भारतीय प्रशासनिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, जिसके माध्यम से ब्रिटिश सरकार ने भारतीय उपनिवेश में शासन व्यवस्था को अधिक संगठित और विकेन्द्रीकृत करने का प्रयास किया। इस अधिनियम के अंतर्गत सबसे प्रमुख प्रशासनिक सुधार यह था कि भारत में संघीय व्यवस्था की परिकल्पना की गई, जिसमें केंद्र और प्रांतों के बीच स्पष्ट रूप से शक्तियों का वितरण किया गया। हालांकि यह संघीय ढांचा व्यवहार में लागू नहीं हो पाया क्योंकि रियासतों ने इसमें सम्मिलित होने से इंकार कर दिया।

एक और महत्वपूर्ण सुधार प्रांतीय स्वायत्तता का प्रावधान था। इसके अंतर्गत प्रांतों से द्वैध शासन की प्रणाली समाप्त कर दी गई और उन्हें स्वतंत्र प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार दिए गए। अब प्रांतीय मंत्रियों को अपने विभागों के कार्य संचालन की जिम्मेदारी दी गई, जिससे वे विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी बने। दूसरी ओर, केंद्र में पहली बार द्वैध शासन लागू किया गया, जहाँ कुछ विषय गवर्नर जनरल के अधीन आरक्षित रहे और कुछ मंत्रियों को सौंपे गए, लेकिन यह व्यवस्था व्यवहार में जटिल और अलोकतांत्रिक सिद्ध हुई।

इस अधिनियम ने लोक सेवा व्यवस्था में भी सुधार किया। संघीय और प्रांतीय लोक सेवा आयोगों की स्थापना की गई, जिससे प्रशासन में भर्ती की पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके। Indian Civil Services को बनाए रखा गया तथा इसे संरक्षित सेवा घोषित किया गया। साथ ही, अधिनियम में वित्तीय प्रशासन को संगठित करने के लिए केंद्र और प्रांतों के बीच करों और संसाधनों के वितरण की विस्तृत व्यवस्था की गई।

न्यायिक सुधारों के अंतर्गत Federal Court of India की स्थापना की गई, जो भारत का पहला सर्वोच्च न्यायालय था। यह न्याय व्यवस्था के केंद्रीकरण और न्यायिक अपील की प्रक्रिया को अधिक संगठित करने की दिशा में एक अहम कदम था।

हालांकि इस अधिनियम से कई सकारात्मक बदलाव आए, लेकिन इसकी कई सीमाएँ भी थीं। गवर्नर जनरल और गवर्नरों को व्यापक अधिकार दिए गए, जिससे भारतीय प्रतिनिधियों की भूमिका सीमित रह गई। केंद्र में लागू द्वैध शासन व्यवहारिक नहीं था, और भारतीयों को पूर्ण स्वराज्य से अभी भी वंचित रखा गया था।

इस प्रकार, भारत सरकार अधिनियम, 1935 प्रशासनिक सुधारों की दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली था। इसने भारतीय प्रशासन में उत्तरदायित्व, संघीयता और लोक सेवा की नींव रखी और आगे चलकर स्वतंत्र भारत के संविधान को आकार देने में मार्गदर्शक की भूमिका निभाई।

4.4 सारांश

भारत के अधिनियम का प्रमुख स्त्रोत 1935 का अधिनियम है। जिसमें संघीय शासन प्रणाली की नींव रखी गई। इस अधिनियम में केन्द्र और राज्य के बीच शक्तियों का बँटवारा किया गया। मताधिकार का विस्तार हुआ। इस अधिनियम की यह विशेषता है कि भारतीय संविधान में इसे यथावत स्थान दिया गया।

प्रत्येक सभ्य समाज को एक अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है और प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितना की हमारी प्राचीन सभ्यता। सरकारी आदेशों और कार्यों को पूरा करने के लिए लोक प्रशासन आवश्यक है। प्राचीन भारतीय प्रशासन का इतिहास जो वैदिक काल से आरम्भ होकर मुगल शासन की स्थापना के साथ समाप्त हो जाता है। भारतीय प्रशासन के विकास के क्रम में अनेक प्रशासनिक संगठनों का विकास एंव ह्रास हुआ, लेकिन गाँव आधारित प्रशासनिक व्यवस्था की विशिष्टता अक्षुण्ण बनी रही।

हमारी वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था का विकास ईस्ट कम्पनी के शासन काल से हुआ। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस काल को 2 भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम काल में 1857 तक के ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन व्यवस्था का वर्णन तथा द्वितीय काल में ब्रिटिश सरकार के 1857 से 1947 तक की शासन व्यवस्था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी विशुद्ध रूप से व्यापारिक दृष्टि से भारत आयी थी। लेकिन बाद में उसने देश का शासन अपने हाथ में ले लिया कम्पनी का शासन 1857 में समाप्त हो गया और भारत का शासन सीधे ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया।

स्वतन्त्रता के बाद योजना हमारी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था का अन्तरंग हिस्सा बन गया है। इन बुनियादी परिवर्तनों के फलस्वरूप लोक–प्रशासन के स्वरूप और कार्यशैली में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। लोक–कल्याणकारी राज्य के साथ–साथ भारतीय लोक प्रशासन भी लोक–कल्याणकारी हो गया है। अतः स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय प्रशासन में निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती है।

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **लोक प्रशासन सिद्धान्त और व्यवहारः**— शर्मा और सडाना, किताब महल नई दिल्ली।
2. **भारतोय लोक प्रशासनः**— शालिनी वाधवा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
3. **भारतोय प्रशासनः**— अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
4. **भारतीय प्रशासनः**— प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

4.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय शासन अधिनियम की स्थापना कब हुई?
   - (a) 1750
   - (b) 1935
   - (c) 1940
   - (d) 1936
2. भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत प्रांतो में द्वैध शासन को समाप्त करते हुए किस तरह के शासन की स्थापना की गई?
   - (a) द्विसदनीय शासन
   - (b) केन्द्रीय शासन
   - (c) स्वशासन
   - (d) प्रांतीय शासन
3. ब्रिटिश संसद द्वारा रेग्यूलेटिंग एक्ट कब पारित किया था?
   - (a) 1750 ई0
   - (b) 1773 ई0
   - (c) 1857 ई0
   - (d) 1940 ई0
4. भारत में ब्रिटिश शासनकाल को कितने चरणों में विभाजित किया गया है?
   - (a) एक

(b) दो

(c) तीन

(d) चार

5. ब्रिटिश सरकार ने सेना के पुर्नगठन के लिए कौन सा कमीशन नियुक्त किया?

(a) स्ट्रेची कमीशन

(b) पील कमीशन

(c) फ्रेजर कमीशन

(d) हण्टर कमीशन

4.7 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. 1935 के अधिनियम पर टिप्पणी लिखे।

2. 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के प्रमुख योगदान का वर्णन कीजिए।

3. रेग्यूलेटिंग एक्ट पर टिप्पणी करें।

4. ब्रिटिश कालीन न्याय एवं कानूनी व्यवस्था कैसी थी?

5. भारत में ब्रिटिश प्रशासन के तीन स्तम्भों के नाम क्या है?

6. ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

4.8 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. ब्रिटिशकालीन दोहरी शासन व्यवस्था का बंगाल की जनता पर क्या प्रभाव पड़ा?

2. ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक नीतियों तथा उनके प्रभावों का वर्णन करें।

इकाई–5 1947 के पश्चात् भारतीय प्रशासन में निरंतरता एवं परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वातन्त्रयोत्तर प्रशासन निरन्तरता और परिवर्तन

5.3 स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय प्रशासन की विशेषताएं

5.4 सारांश

5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.6 बोध प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय प्रशासन में होने वाले मूलभूत परिवर्तनों की चर्चा करेंगे।

- इस इकाई में यह बताया गया है कि भारतीय प्रशासन की वर्तमान संरचना और कार्यविधि पर भारतीय प्रशासन के इतिहास का एक निर्णायक प्रभाव पड़ा है।
- आजादी के बाद भारतीय प्रशासनिक व्यवथा के महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे सचिवालय व्यवस्था, जिला एवं क्षेत्रीय प्रशासन, लोक सेवा, संसदीय प्रणाली, न्यायप्रणाली, स्थानीय स्वाशासन आदि में होने वाले परिवर्तनों की चर्चा की गई है।
- यह ज्ञान प्राप्त होता है कि स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में कौन–कौन सी प्रभावशाली प्रवृत्तियाँ विकसित हुई।
- आजादी के बाद भारत की प्रशासनिक व्यवस्था जिसका निर्माण भारत के नवीन संविधान के आधार पर किया गया है के प्रशासन की अनेक नवीन प्रवृत्तियों के बारे में हम ज्ञान प्राप्त करेंगे।

5.1 प्रस्तावना

15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता के साथ ही ब्रिटिश शासन का अन्त हो गया। 26 जनवरी 1950 को नये संविधान को अपनाया गया और भारत एक नया गणतन्त्र बन गया देश के सामने सबसे अहम प्रश्न था कि भारतीय गणतन्त्र कैसा हो और सत्ता के साथ–साथ ब्रिटिश शासन से विरासत में मिली तमाम राजनीतिक व्यवस्था नियमों और प्रशासनिक तन्त्र को भारतीयों द्वारा कैसे अपनाया जाये। उन दिनों की ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था और ढाँचा भारतीयों की आकांक्षाओं के पूरा करने में सक्षम था अतः हमने स्वतन्त्रता के बाद भी ब्रिटिश कालीन संस्थाओं को समय की आवश्यकताओं के अनुरूप कुछ परिवर्तनों के साथ जैसे का तैसा अपना लिया। हम देख सकते हैं कि आज भी भारतीय प्रशासन में तमाम चीजें उसी रूप में विद्यमान हैं जिस रूप में वो हमें ब्रिटिश शासन काल में प्राप्त हुयी थी जैसे–संसदीय प्रजातन्त्र, संघीय ढाँचा, सचिवालयी व्यवस्था, केन्द्रीय और प्रान्तीय प्रशासन, अखिल भारतीय सेवायें, जिला और क्षेत्रीय प्रशासन, स्थानीय सरकार, कानून का शासन आदि।

5.2 स्वातन्त्रयोत्तर प्रशासन निरन्तरता और परिवर्तन

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ और 26 जनवरी, 1950 को नया संविधान लागू हुआ। स्वतन्त्र होने के बाद भारतीय प्रशासन में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं। प्रशासन की नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगी। मन्त्रिमण्डल के सामूहिक उत्तरायित्व सिद्धांत पर आधारित उत्तरदायी सरकार की स्थापना हुई। अखिल भारतीय और राज्य सेवाओं का विकास हुआ तथा प्रशासन के उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य बढ़े हैं। स्वतन्त्र भारत के प्रशासन की आधार भूमि;

निर्देशांक, आदर्श और प्रेरक शक्ति हमारे संविधान के उन सिद्धानों में निहित हैं जो अपने सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार–अभिव्यक्ति, विश्वास और पूजा की स्वतन्त्रता, स्तर और अवसर की समानता देना चाहते हैं। भारतीय संविधान ने संघीय और राज्य कार्यपालिकाओं, विधायिकाओं, सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों, लोक–सेवा आयोग आदि संस्थाओं के अधिकार स्पष्टतः परिभाषित किये हैं।

भारतीय प्रशासन के विकास का इतिहास उसकी वर्तमान संरचना एवं प्रशासनिक कार्यविधि पर एक निर्णायक प्रभाव छोड़ सका है। ये प्रशासनिक विरासतें भारतीय प्रशासन के यथार्थ से इस प्रकार जुड़ी हैं कि उन्हें वर्तमान भारतीय प्रशासन से पृथक नहीं किया जा सकता। शताब्दियों के अन्तराल में भारतीय प्रशासकों की आदत का अन्तर बन जाने के कारण ये विरासतें प्रभावी हैं और प्रशासन को निरन्तरता देती हैं। आज भी ब्रिटिश प्रशासनिक प्रभाव को भारतीय प्रशासन के विविध आयामों में देखा जा सकता है। भारतीय प्रशासन के जिन क्षेत्रों में यह प्रभाव देखने की मिलता है उनमें से प्रमुख हैं– सचिवालीय व्यवस्था, जिला एवं क्षेत्रीय प्रशासन, लोक–सेवाएँ कार्य–प्रक्रिया, संसदीय प्रणाली, न्याय–प्रणाली, स्थानीय स्वशासन, आदि। स्वतन्त्रता के बाद भारत के नवनिर्मित संविधान के अधीन जहां भारत ने एक ओर चतुर्मुखी विकास किया वहीं दूसरी ओर कुछ क्षेत्रों में हमें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। उसे देश में राजनीतिक अस्थिरता, राजनीतिक अपराधिकरण, आतंकवाद, जातिवाद, तथा धर्म का बढ़ता प्रभाव, कानून की स्थिति में गिरावट, हिंसा का बढ़ता प्रभाव, प्रशासन का गिरता स्तर आदि के रूप में देखा जा सकता है। इन सभी चुनौतियों में भारत की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला जिसके प्रमाण स्वरूप भारत में प्रशासनिक व्यवस्था में अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुयी। यह बदलाव विशेषकर सचिवालय, लोकसेवाओं, सरकारी उपक्रमों और बजट में होने वाली अप्रत्याशित वृद्धि में स्पष्टतः देखा जा सकता है। यह वृद्धि मन्त्रालयों एवं विभागों में देखने को मिलती है। 15 अगस्त, 1947 को केन्द्रीय सरकार के मन्त्रालयों की संख्या 18 थी जो बढ़कर 1994 में 94 हो गयी। इसमें विभिन्न मन्त्रालयों और विभागों में राजनीतिक नियुक्तियों के फलस्वरूप निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस बढ़ती हुई संख्या को रोकने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया। समिति ने यह सिफारिश की कि मन्त्रियों की संख्या संसद में सत्तारूढ़ सांसदों की संख्या के दस प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। यह उचित सलाह व्यवहार में नहीं मानी गयी और मन्त्रियों की संख्या राजनीतिक आधारों पर निर्धारित की जाती है। केन्द्र की तुलना में राज्यों की स्थिति इस सम्बन्ध में और भीखराब है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार के लिए मन्त्रालयों और विभागों की वृद्धि पर अंकुश लगाना सम्भव नहीं है। यह प्रवृत्ति सार्वजनिक क्षेत्रों में भी देखने को मिलती है। गतिमान एवं सन्तुलित आर्थिक–सामाजिक उन्नति में सहायक होने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र ने स्वतन्त्र भारत में दिन–दूनी रात–चौगुनी प्रगति की है। हमारे देश में सार्वजनिक–क्षेत्र का प्रत्येक योजना के साथ विकास होता रहा है।

नवीन प्रवृत्तियाँ:–स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय प्रशासन में नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। 26 जनवरी, 1950 के बाद भारत में लोकत्रन्त्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और विकास के लिए लोक प्रशासन युग का प्रारम्भ हुआ है। वर्तमान लोक प्रशासन औपनिवेशिक शोषण और दमन यन्त्र के स्थान पर सम्प्रभु लोकतान्त्रिक गणतन्त्र का सेवक बन गया है। अब लोक प्रशासन नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने का साधन बन गया है। लोक प्रशासन अब केवल कानून और व्यवस्था मात्र स्थापित करने वाला उपकरण नहीं रहा है बल्कि जन–कल्याण और आर्थिक विकास का अभिकर्ता बन गया है। साथ में लोक प्रशासन को संसद के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया है।

लोक प्रशासन में प्रक्रियात्मक सुधार एवं प्रशासकों के सभी स्तरों पर प्रशिक्षण को विशेष महत्त दिया जाने लगा है। सूचना प्रौद्योगिकी में ई–गवर्नेन्स को स्वीकार करना है। नागरिक चार्टर, पंचायतों को अधिक अधिकार देना एवं महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु प्रयास किये गये हैं। प्रशासन को पारदर्शी बनाने हेतु नागरिकों को सूचना पाने का अधिकार प्रदान कर दिया गया है। साथ में प्रशासन को सामयिक एवं अधिक सार्थक बनाने हेतु प्रयास किये जा रहे हैं।

हमारे संविधान में वर्तमान समाज और व्यवहार में, एकता और विघटन दोनों के तत्व सम्मिलित हैं। यद्यपि एक राष्ट्र के रूप में भारत की सफलता समस्त सफलताओं से सर्वोपरि है, फिर भी यह जानना आवश्यक है कि एकता स्थापित करने वाले कौन से तत्व हैं और क्या वे पर्याप्त हैं? एपल्बी द्वारा वर्णित एकता स्थापित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं :–

1. संविधान की सामान्य विशेषता यह है कि इसमें लचीलापन और विकास की पर्याप्त गुंजाइश है।
2. केन्द्र और राज्यों के मध्य विवादों से निपटने के लिए केन्द्र के पास शक्ति निहित होना।
3. राष्ट्रीय कानून के विपरीत किसी भी राज्य के विधान को वीटो करने की शक्ति केन्द्र में निहित होना।
4. आपातकालीन स्थिति में केन्द्र द्वारा राज्य के प्रशासन को अपने अधीन करने की शक्ति।
5. राज्यों की नीतियों को ऋण एवं अनुदान की सहायता के माध्यम से प्रभावित करने की क्षमता केन्द्र के पास होना।
6. केन्द्र द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति।
7. प्रधानमन्त्री की विशेष स्थिति।
8. राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की शक्ति का केन्द्र के पास होना।

उपर्युक्त सूची काफी प्रभावशील है, और अनेक तत्व देश की एकता के लिए महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय प्रशासन में परिवर्तन का स्वरूपः— यह सर्वविदित है कि आज का प्रशासन संविधान में वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बन गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय प्रशासन के उद्देश्यों और ढाँचें में बुनियादी परिवर्तन हुआ है जिसके कारण निम्नलिखित हैं :

1. **प्रशासन के लक्ष्यों में परिवर्तन**— संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों तथा नीति—निर्देशक सिद्धान्तों के अध्याय में संविधान के उद्देश्यों का स्पष्ट वर्णन किया गया है। अब हमारा राज्य लोक—कल्याणकारी राज्य बन गया है।
2. **समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य**— संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा प्रस्तावना में 'समाजवादी राज्य' और 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' घोषित किया गया है।
3. **संघात्मक राज्य**— स्वतन्त्रता के बाद एकात्मक सरकार के स्थान पर 'संघात्मक शासन' स्थापित किया गया है।
4. **संसदीय शासन—प्रणाली**— संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत कार्यपालिका को संसद के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया है।
5. **प्रशासन में जन**— प्रतिनिधियों की भागीदारी में पहले की तुलना में भारी वृद्धि हुई है।

5.3 स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय प्रशासन की विशेषताएं

स्वतन्त्रता के बाद योजना हमारी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था का अन्तरंग हिस्सा बन गया है। इन बुनियादी परिवर्तनों के फलस्वरूप लोक—प्रशासन के स्वरूप और कार्यशैली में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। लोक—कल्याणकारी राज्य के साथ—साथ भारतीय लोक प्रशासन भी लोक—कल्याणकारी हो गया है। अतः स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय प्रशासन में निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती है।

(1) **परिवर्तनशील एवं गतिशील प्रशासनः**— स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन में परिवर्तन, विकास और सुधार की प्रक्रिया जारी है तथा एक विकासशील देश की आवश्यकताओं के अनुरूप उसे ढालने का प्रयत्न किया गया है। पुरानी विरासत को नवीन परिवेश में संजोने के प्रयत्न किये गये हैं जो आज भी जारी है। अब प्रशासन जनसेवक तथा जनता के सीधे नियन्त्रण का विषय बन गया है।

(2) **विकास प्रशासनः**— यह भारतीय प्रशासन की एक अनुपम विशेषता है। विकास प्रशासन एक गतिशील परिवर्तनात्मक अवधारणा है जो समाज में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन लाने हेतु प्रयत्नशील है। इसमें प्रशासन के विकास पर महत्व दिया जाता है। विकास प्रशासन योजना, नीति कार्यक्रम तथा परियोजना से सम्बन्ध रखता है। यह सरकार का कार्यात्मक पहलू है, जिसका तात्पर्य सरकार द्वारा जन—कल्याण तथा जनजीवन को व्यवस्थित करने के लिए किये गये प्रयासों से है। स्वतन्त्रता के पश्चात्

भारतीय प्रशासन में विकास प्रशासन के तत्व देखने को मिलते हैं, जैसे–परिवर्तनोन्मुखी, प्रजातान्त्रिक मूल्यों से सम्बन्धित, आधुनिक जन–आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील, तथा आर्थिक विकास के प्रति प्रयत्नशील। आज प्रशासन के द्वारा जन–सम्पर्क को अधिक महत्व दिया जा रहा है तथा जन–सहयोग प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे है।

(3) **उत्तरदायी प्रशासनः**– स्वतन्त्र भारत की प्रशासनिक व्यवस्था में जो अनेक परिवर्तन किये गये है, उनमें प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संसदीय प्रणाली में संसद–सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं और मन्त्रिपरिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य विभिन्न प्रशासनिक विभागों के राजनीतिक प्रमुख होने के नाते अपने विभाग के प्रति उत्तरदायी होते है।

(4) **विधि का शासनः**– भारत में लोक प्रशासन विधि पर आधारित है। समस्त कार्य कानून की अधिकार–सीमा के अन्तर्गत ही होते हैं। न्यायायल इस बात को देखता है कि प्रशासन कहीं कानूनों का उल्लंघन तो नहीं कर रहा है। उल्लंघन करने पर न्यायालय उन्हें अवैध घोषित कर सकता है। इसके साथ–साथ संविधान की प्रस्तावना में प्रशासन के समक्ष पाँच स्पष्ट उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं – न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना।

(5) **नौकरशाही एवं लालफीताशाहीः**– नौकरशाही लालफीताशाही का पर्याय बनता जा रहा है। इसके अन्तर्गत औपचारिकता को इतना अधिक महत्व दिया जाता है कि कोई भी निर्णय लेने में काफी लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है और निर्णय काफी विलम्ब से होता है। लालफीताशाही अनावश्यक विलम्ब नागरिकों की परेशानी और प्रशासनिक अकार्यकुशलता को जन्म देती है। यह भारतीय प्रशासन की एक अवांछनीय बुराई बन गयी है।

(6) **आरक्षण व्यवस्थाः**– समाज के पिछड़े व कमजोर वर्ग प्रशासनिक सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व से वंचित न रहें, इस हेतु भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषता है।

(7) **प्रशासन की राजनीतिक तटस्थताः**– तटस्थता का अर्थ यह है कि लोक–सेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक विचारों या अवधारणाओं से पूर्ण मुक्त रहता है। भारत में लोक सम्बन्धी आचरण के नियमों के अनुसार सरकारी कर्मचारियों पर राजनीतिक कार्यों में क्रियात्मक रूप से भाग लेने पर प्रतिबन्ध है। फलस्वरूप प्रशासन–तन्त्र के सदस्य सरकार की नीतियों के पालन में उनकी निष्ठा पर सरकार के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रशासन की यह राजनीतिक तटस्थता भारत की संवैधानिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित की गयी है।

(8) **सामाजिक–आर्थिक न्याय हेतु प्रशासनः**–संविधान ने प्रशासन पर सामाजिक न्याय व लोक–कल्याण के जटिल उद्देश्यों के लिए निर्मित विविध प्रकार की नीतियों का क्रियान्वयन करने का दायित्व सौंपा है। भारत में लोक–कल्याणकारी राज्य की स्थापना का कार्य सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था के माध्यम से ही सम्पन्न किया जा सकता है। इससे प्रशासन का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है। इस प्रकार इस प्रकार लोक कल्याण तथा सामाजिक व आर्थिक न्याय की स्थापना का भारतीय प्रशासन का मूल उद्देश्य भारत के संविधान के स्वरूप से ही निर्धारित हुआ है।

(9) **समन्वित प्रशासनिक व्यवस्थाः**– भारतीय संघात्मक व्यवस्था में एकात्मक तत्वों के समावेश ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के समन्वित स्वरूप को निर्धारित किया है। संघीय सिद्धान्त के प्रतिकूल भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच सम्मिलित सेवाअें की व्यवस्था है जिसे अखिल भारतीय सेवाएं कहते हैं। संविधान में व्यवस्था है कि ''भारतीय प्रशासन सेवा और भारतीय पुलिस सेवा राज्यों और संघ दोनो में समान रूप से कार्य करेगी।'' इन सेवाओं के सृजन का मुख्य उद्देश्य यही है कि अधिकतम अन्तर्राज्यीय सहयोग और समन्वय प्राप्त किया जाय। समन्वित प्रशासनिक व्यवस्था इस बात से भी स्पष्ट है कि केन्द्रीय कानूनों और नीतियों को लागू करने के लिए केन्द्र सरकार ने किसी पृथक प्रशासनिक व्यवस्था का अस्तित्व नहीं स्वीकारा हे अपितु यह कार्य राज्यों के प्रशासनिक तन्त्र द्वारा किया जाता है।

(10) **संख्यात्मक वृद्धि एवं बढ़ती हुई शक्तियाँः**– आज विश्व के लगभग सभी देशों में लोक–सेवाओं और

लोक–सेवकों दोनां की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। पारकिन्सन के नियम के अनुसार, ''लोक–सेवाओं में प्रति वर्ष 5.75 प्रतिशत की वृद्धि होती है।'' भारत में स्वतन्त्रता के बाद सरकारी कर्मचारियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है और नये–नये विभाग खुलते जा रहे हैं। लोक सेवाओं की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ उनकी शक्तियों, कार्यों तथा प्रभाव में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है। भारत इसका अपवाद नहीं है। स्वतन्त्र भारत की आर्थिक एवं सामाजिक कठिनाईयों ने एक कल्याणकारी राज्य तथा समाजवादी समाज की धारणा और उसकी स्थापना के विचार को बल प्रदान किया है। भारत में नये–नये कार्य तथा उत्तरदायित्व ग्रहण किये जाने के कारण लोक–सेवा के महत्व में वृद्धि हुई है। अब लोक–कर्मचारी केवल पुलिस या राजस्व अधिकारी मात्र नहीं है अपितु वे अनेक प्रकार के विकास–कार्यों और परियोजनाओं के परिपालन में संलग्न है।

(11) सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञः– स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार के कार्यों की प्रकृति में परिवर्तन होने के साथ ही लोक–सेवा में अधिकाधिक विशेषज्ञों, प्राविधिकों तथा दक्षों की नियुक्ति होने लगी है। लोक–सेवा में आज विशेषज्ञता का प्रचलन है तथा तकनीकी कर्मचारियों की संख्या पहले की अपेक्षा अधिक है। सरकार अब केवल लिपिकों तथा सामान्यवादियों की नियुक्ति नहीं करती है; अब वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, इंजीनियरों, मनोवैज्ञानिकों, कृषि–शास्त्रियों, विधिवेत्ताओं, अर्थशास्त्रियों, सांख्यिकों आदि को भी नियुक्त किया जाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के बाद देश के विकास और आधुनिकीकरण करने की जो चुनौतियाँ सामने आयीं, उनको ध्यान में रखकर ही भारतीय प्रशासन को नये सिरे से परिवर्तित करने और उसे लोकतान्त्रिक स्वरूप प्रदान करने के प्रयास किये जाते रहे हैं।

5.4 सारांश

भारत में लोकतन्त्र, विकास, लोककल्याण और समाजवाद के लिए लोक प्रशासन युग की शुरूआत हुई है। इसके परिणामस्वरूप भारतीय प्रशासन को नवीन और विशिष्ट महत्त्व के कार्यों के सम्पादन की चुनौती स्वीकारकरनी पड़ी। स्वतन्त्रता के बाद जो प्रशासन औपनिवेशिक शोषण और दमन का यन्त्र था वह अब सम्प्रभु लोकतान्त्रिक गणतन्त्र का सेवक बन गया। सम्प्रभु लोकतान्त्रिक गणतन्त्र की मूर्तिमान संस्था का रूप संसद ने ग्रहण किया। लोक प्रशासन को संसद के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। संविधान में केन्द्र और राज्यों के लोक प्रशासन की संरचना के उपबन्ध निश्चित किए गए। संविधान में लोक प्रशासन की संरचना के कुछ सिद्धान्तों का भी उल्लेख किया गया। जिनमें प्रमुख हैः– संसदीय शासन व्यवस्था, उत्तरदायी कार्यपालिका, विकेन्द्रीयकरण तथा पंचायती राज की स्थापना, कार्यपालिका और न्यायपालिका का पृथक्करण, प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण, समानता का सिद्धान्त, विधि का शासन, प्रशासन की राजनीतिक तटस्थता, समन्वित प्रशासनिक व्यवस्था आदि।

5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **भारतीय प्रशासनः–** डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मी नारायण, आगरा।
2. **भारत में लोकप्रशासनः–** बी0एल0 फाड़िया, साहित्य भवन, आगरा।
3. **भारत का प्रशासनः–** होशियार सिंह
4. **आधुनिक लोक प्रशासनः–** आर0के0 दूबे, लक्ष्मीनारायण, अग्रवाल, आगरा।

5.6 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. भारत में योजना आयोग की स्थापना 1950 में की गयी थी।

   (i) संसद के एक्ट द्वारा

   (ii) केन्द्रीय सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा

   (iii) राष्ट्रीय विकास परिषद् के निर्णय द्वारा

(iv) राष्ट्रपति के आदेश द्वारा

2. पंचवर्षीय योजनाओं को अंतिम स्वीकृति कौन देता है।

(i) योजना आयोग

(ii) राष्ट्रीय विकास परिषद

(iii) केन्द्रीय मंत्रिमण्डल

(iv) संसद

3. निम्न में से कौन सा ऐसा है जो भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन की विशेषता नहीं कहा जा सकता।

(i) निरंकुश सरकार

(ii) कल्याणकारी राज्य का न होना

(iii) लोकमत के प्रति उत्तरदायी

(iv) कार्यकुशल नौकरशाही संरचना

लघुउत्तरीय प्रश्न :–

1. भारतीय प्रशासन के विकास पर टिप्पणी करें।
2. भारतीय प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ।
3. स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय प्रशासन के विभाजन प्रणाली की व्याख्या करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. 1947 के पश्चात् भारतीय प्रशासन की चुनौतियों की व्याख्या करें।
2. भारतीय प्रशासन : ब्रिटिश शासन की विरासत है स्पष्ट कीजिए।

खण्ड–2

इकाई–6 केन्द्रीय प्रशासन का संवैधानिक ढांचा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 केन्द्रीय प्रशासन का संवैधानिक ढांचा

6.3 सारांश

6.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.5 बोध प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में स्वतन्त्र भारत की प्रशासनिक संस्थाओं तथा केन्द्रीय प्रशासन के आधारभूत संवैधानिक ढाँचे के चर्चा की गई है।

- इस इकाई में हम भारत के शक्तिशाली केन्द्रीय शासन जिसकी स्थापना एक लिखित एक लिखित संविधान द्वारा की गई है कि जानकारी प्राप्त करेंगे।
- भारतीय प्रशासन संविधान के वर्णित उद्देश्यों को प्राप्त करेन का एक साधन है हमारे संविधान में बहुत से ऐसे प्रावधान है जो लोक प्रशासन को प्रभावित करते है जिनके बारे में चर्चा करेंगे।
- इस इकाई में संविधान में लोक प्रशासन की संरचना के निहित सिद्धान्तों के बारे में परिचय प्राप्त करेंगे।

6.1 प्रस्तावना

संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार भारत में एक संसद होगी यह संसद द्विसदनीय होगी। उच्च सदन राज्यसभा कहलाता है जबकि निम्न सदन लोकसभा कहलाता है। राज्यसभा के सदस्यों का चुनाव राज्यों के विधायक करते हैं जबकि लोकसभा के सदस्यों का चुनाव, प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा आम जनता करती है। संघ का मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। यदि लोकसभा का विश्वास मंत्रिमण्डल में नही रहता है तो प्रधानमंत्री सहित समूचे मंत्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है। भारत की शासन व्यवस्था में संसद का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि हमारे यहां संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था है। हम यह भी कह सकते हैं कि भारत में कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियां, संसद में ही निहित होती हैं।

सामान्य शासन चलाने का कार्य संघीय कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। यह कार्यपालिका, राष्ट्रपति और मन्त्रीपरिषद् से मिलकर बनी होती है। संघीय कार्यपालिका सामूहिक रूप से संसद के एक सदन लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है हमारे संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश प्रणाली के मुताबिक उत्तरदायी या संसदीय प्रणाली की कार्यपालिका अपनायी है और इसी के आधार पर मंत्रिमण्डलात्मक प्रणाली का प्रावधान किया गया है। संसदीय सरकार में राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष होता है लेकिन वास्तविक शक्तियां मन्त्रीपरिषद् में निहित होती हैं। मन्त्रीपरिषद् का प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। भारतीय संसद के 3 अंग हैं–लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति।

6.2 संवैधानिक ढांचा

भारत का संघवाद– भारत किस प्रकार का राष्ट्र होगा और यहाँ किस प्रकार की शासन व्यवस्था होगी, इसका विस्तार से उल्लेख भारतीय संविधान में ही कर दिया गया है। भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद में ही कहा गया है कि भारत, राज्यों का एक संघ होगा। वर्तमान में भारतीय संघ में 28 राज्य और 8 केन्द्रशासित क्षेत्र हैं। संविधान

में किसी राज्य के सीमा–क्षेत्र को कम करने अथवा बढ़ाने, किसी भी राज्य की सीमा में परिवर्तन करने तथा नाम में संशोधन करने का उल्लेख किया गया है।

भारतीय संघ–राज्य का दूसरा विशिष्ट लक्षण यह है कि दो विभिन्न संघीय इकाइयों की स्थिति में विभिन्नता है तथा समस्त इकाइयां समान नहीं हैं। संघटक इकाइयां दो प्रकार की हैं–राज्य और संघ क्षेत्र। इन संघटक इकाइयों में राजनीतिक तथा प्रशासनिक संगठन की दृष्टि से बुनियादी अंतर है। भारत को 'संघीय राज्य' जिसमें संघीय विशेषताएं हैं, कहा जाता है। इस क्षेत्र में विद्वानों की आम राय यह है कि भारतीय संघीय राज्य–व्यवस्था शक्तिशाली है। भारतीय संघराज्य की स्थापना अन्य संघों की भांति नहीं हुई है। हमारे संविधान में संघात्मक व्यवस्था के समस्त लक्षण विद्यमान हैं। ये लक्षण है :–

1. संविधान की सर्वोच्चता का आशय यह है कि संघीय राज्य में लिखित संविधान सर्वोच्च कानून होता है।
2. अन्य संघ राज्यों की भांति भारतीय संविधान द्वारा भी संघ और राज्यों के बीच शक्ति का विभाजन किया गया है।
3. भारतीय संविधान के संरक्षण के रूप में कार्य करने के लिए एक स्वतंत्र सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गयी है।
4. हमारे संविधान में संशोधन–प्रणाली पूर्णतया संघीय प्रक्रिया के अनुरूप है।
5. स्वतंत्र और प्रभुत्व–सम्पन्न इकाइयों में यह समझौता कि अपने सामान्य हितों की रक्षा के लिए संघ को अपनी सत्ता का सीमित मात्रा में हस्तान्तरण करना हैं।

हमारे संविधान ने केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की एक निश्चित सुस्पष्ट योजना अपनायी है, जिसका संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है जिन्हें संघ सूची, राज्य व समवर्ती सूची कहते हैं। संघीय सूची में राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों को रखा गया है। इस सूची में 97 विषय हैं। इस सूची में 66 विषय हैं। समवर्ती सूची में वे विषय रखे गये हैं जिनका महत्त क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दृष्टियों से होता है। इस सूची में 47 विषय हैं। स्मरणीय है कि संविधान के 42वें संशोधन द्वारा राज्य की विधानसभाओं की शक्तियों को इस दिशा में कम कर दिया गया है। कहा जा सकता है कि हमारा संविधान स्वरूप में संघात्मक है जिसमें शक्तिशाली एकात्मक लक्षण विद्यमान हैं। संविधान द्वारा संघ तथा घटक इकाइयों की शक्तियों का विभाजन किया गया हैं। स्विट्जरलैण्ड और अमरीका की भांति भारत में राज्यों को कोई अवशेष प्रभुता प्राप्त नहीं है और राज्य सचमुच में संविधान की संतान है। शासकीय नीतियों, कार्यक्रमों, योजनाओं को लागू करने का दायित्व राज्य की सरकारों का होता है। राज्य सरकारें संघ सरकार की नीतियों को लागू करने में सहायता प्रदान करती हैं। सच तो यह है कि लोककल्याणकारी कार्यक्रमों की सफलता की कुंजी राज्य सरकारों के पास होती है। प्रशासन और शासन में जनता की सहभागिता राज्य–स्तर पर ही सम्भव है।

भारत में संसदीय लोकतंत्र– 1947 के स्वतंत्रता अधिनियम के द्वारा केन्द्र एवं राज्यों के लिए उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गयी थी। इसलिए, 1947 में जब संविधान–सभा संविधान बनाने के लिए आमंत्रित की गयी, तब अधिकांश सदस्यों ने संसदीय लोकतांत्रिक सरकार का समर्थन किया। यह सत्य है कि अध्यक्षात्मक सरकार के समर्थन में सुझाव प्रस्तुत किये गये थे, किन्तु वे ब्रिटिश मॉडल के पक्ष में अस्वीकृत कर दिये गये। फिर भी अध्यक्षात्मक सरकार की कुछ विशेषताओं को अवश्य स्वीकार कर लिया गया। ऐसा निर्णय देश के ऐतिहासिक, संवेधानिक और राजनीतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में किया गया था। ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के विशिष्ट लक्षण हैं :

1. राज्य के संवैधानिक प्रमुख और सरकार के प्रमुख में अंतर का होना।
2. बहुल कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रीपरिषद् की सरकार।
3. मन्त्रियों का उत्तदात्यिव, और
4. संसद की सर्वोच्चता या प्रभुता।

संसद की सर्वोच्चता– प्रसिद्ध विद्वान डायसी के अनुसार संसदीय सरकार का एक विशिष्ट लक्षण संसद की प्रभुता है। ब्रिटिश संसद संपूर्ण ब्रिटेन में वैधानिक दृष्टि से सर्वोच्च है। इस प्रभुता के दो पहलू हैं। प्रथम, इसका आशय है

कि संसद कानून बना सकती है, उसे संशोधित अथवा समाप्त कर सकती है। इस प्रकार संसद के कानून बनाने पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है। द्वितीय, संसद द्वारा निर्मित किसी भी कानून को न्यायालय अवैधानिक घोषित नहीं कर सकता। ब्रिटिश न्यायालय को न्यायिक समीक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं हैं। 1947 के बाद विशेषकर आपातकाल के समय (1975–77) संसद की सर्वोच्चता के नाम पर संविधान में अनेक संशोधन किये गये और न्यायालयों की न्यायिक समीक्षा के अधिकार को कम कर दिया गया। यह मत पहले और आज भी असमर्थनीय है। ब्रिटेन का उदाहरण भारतीय परिस्थितियों में पूर्णतः लागू नहीं होता। द्वितीय, संघीय राज्य में संविधान में संशोधन के लिए राज्य की सहभागिता आवश्यक होती है।

संविधान–सभा में जब संविधान का निर्माण किया जा रहा था तब यह मांग उठी थी कि अध्यक्षात्मक को स्वीकार कर लेना चाहिए। संसदीय और अध्यक्षात्मक सरकार के पक्ष एवं विपक्ष के समर्थन में पर्याप्त चर्चा हुयी थी। लम्बी बहस के पश्चात् संविधान–सभा ने संसदीय शासन–प्रणाली को स्वीकार किया। भारत में राजनीतिक अस्थिरता के कारण विद्वानों ने अध्यक्षात्मक शासन–प्रणाली का समर्थन नही किया।

भारत का राष्ट्रपति– भारतीय संविधान में राष्ट्रपति का पद बेहद महत्त्व का होता है। इस पद के अत्याधिक महत्त्वपूर्ण और सम्मानजक होने के कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक ऐसे समूह द्वारा किया जाता है जिसमें पूरे देश का प्रतिनिधित्व होता हैं। इस निर्वाचन मण्डल में राज्य के विधान मण्डलों के सदस्यों के अतिरिक्त संसद के दोनो सदनों के सदस्य सम्मिलित रहते है इस प्रकार राष्ट्रपति का चुनाव पूरे देश के लोगो द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति के पद के महत्व का दूसरा प्रमुख कारण यह है कि राष्ट्रपति द्वारा संविधान की रक्षा की शपथ ली जाती है। राष्ट्रपति देश की सभी सेनाओं के प्रधान सेनापति भी होते हैं इसलिए भी राष्ट्रपति की महत्ता कुछ ज्यादा बढ़ जाती है। भारतीय संविधान में राष्ट्रपति की स्थिति कुछ विचित्र प्रकार की है। संविधान में राष्ट्रपति राज्य शक्ति का प्रतीक अवश्य होते हैं लेकिन वे वास्तविक शासक नही होते हैं। डॉ0 अम्बेडकर ने भी कहा था कि हमारा राष्ट्रपति हमारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है लेकिन वह शासन नहीं करता है। संविधान के **अनुच्छेद 74(1)** में कहा गया है कि राष्ट्रपति को अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए सहायता देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी। जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा।

राष्ट्रपति भारत के संविधान का केन्द्र बिन्दु है जिसके आधार पर संविधान द्वारा स्थापित समस्त संस्थायें स्थिर हैं। राष्ट्रपति को बहुत सी व्यक्तिगत उन्मुक्तियां तथा सार्वजनिक शक्तियां प्राप्त हैं। अपने कार्यों के लिए राष्ट्रपति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों को प्रयोग करते हुए उसके सम्बन्ध में उसके विरूद्ध किसी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। उसे न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न कारागार भेजा जा सकता है। उसके कार्यकाल में उसके विरूद्ध दण्ड विधि की कोई प्रक्रिया लागू नहीं हो सकती है।

संघ की मन्त्रिपरिषद्– संविधान के **अनुच्छेद 74(1)** में कहा गया है कि संघ में एक मन्त्रीपरिषद् होगी जो राष्ट्रपति को उसके कर्तव्यों की पूर्ति में सहायता करेगी। इस मन्त्रीपरिषद् का नेतृत्व प्रधानमंत्री करता है। भारतीय संविधान के अनुसार मन्त्रीपरिषद् की सत्ता अनिवार्य है और इसका निर्माण राष्ट्रपति के लिए आदेशात्मक है। संविधान में कहा गया है कि मन्त्रीपरिषद् के बिना राष्ट्रपति अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर सकता। **अनुच्छेद 75** के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी जबकि मन्त्रीपरिषद् के अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह से करेगा। ये मन्त्रीगण, राष्ट्रपति के प्रसाद–पर्यन्त पदासीन रह सकते हैं।

राष्ट्रपति की यह मन्त्रीपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। वह लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करने का निमन्त्रण दे। हालांकि संविधान में ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है लेकिन राष्ट्रपति, लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री के परामर्श से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करेगा। यदि कोई व्यक्ति सदन का सदस्य नहीं है तो भी उसे मन्त्री नियुक्त किया जा सकता है लेकिन उसे अगले 6 माह के भीतर संसद के किसी एक सदन का सदस्य बनना पड़ेगा। यहाँ एक और बात उल्लेखनीय है कि भारत के संविधान में मन्त्रिपरिषद् शब्द का उल्लेख किया गया है, मन्त्रिमण्डल शब्द का नहीं लेकिन आम जनता के बीच मन्त्रीमण्डल शब्द ही अधिक प्रचलित है। मन्त्रीमण्डल का प्रत्येक सदस्य, मन्त्रीपरिषद् का सदस्य होता है लेकिन मन्त्रीपरिषद् का प्रत्येक सदस्य मन्त्रीमण्डल का सदस्य नहीं हो सकता। मन्त्रीमण्डल ही

देश की नीतियों का निर्धारण करता है मन्त्रीपरिषद् में निम्नलिखित स्तर के मन्त्री होते है :

- मन्त्रीमण्डल के सदस्य
- कैबिनेट स्तर के मंत्री लेकिन मन्त्रीमण्डल के सदस्य नहीं
- राज्यमन्त्री
- उपमन्त्री
- संसदीय सचिव

संविधान में कहा गया है कि मन्त्रीपरिषद् का कार्य, राष्ट्रपति के प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में सहायता देना है। मन्त्रीमण्डल के कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) नीति–निर्धारण सम्बन्धी कार्य

(2) प्रशासन सम्बन्धी कार्य

(3) विधायी कार्य

(4) वैदेशिक कार्य

(5) समन्वय सम्बन्धी कार्य

मन्त्रिमण्डल ही वास्तविक कार्यपालिका होती है इसलिए प्रशासकीय कार्यों का संचालन करना मन्त्रीमण्डल का ही कार्य होता है। सरकार की आर्थिक नीतियों का निर्धारण भी यह मन्त्रीमण्डल ही करता है। विदेशी राष्ट्रों के साथ राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक समझौते करने का कार्य भी यह मन्त्रीमण्डल ही करता है। मन्त्रीमण्डल का एक और प्रमुख कार्य होता है शासन के विभिन्न विभागों के कार्यों का मार्गदर्शन करना और उनके बीच समन्वय स्थापित करना।

संघ का प्रधानमंत्री– कार्यपालिका संवैधानिक प्रमुख राष्ट्रपति होता है लेकिन इसका वास्तविक प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। मन्त्रीमण्डल की समस्त शक्तियाँ भी प्रधानमन्त्री में ही निहित होती हैं। प्रधानमन्त्री ही कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष होता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने प्रधानमंत्री के सन्दर्भ में कहा था कि 'वास्तव में प्रधानमंत्री, सम्पूर्ण तंत्र की धुरी होता है।' किसी विद्वान नेकहा हे कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के सालों में मन्त्रीमण्डलीय शासन प्रणाली, प्रधानमंत्रीय शासन प्रणाली में बदल गयी है। आजादी मिलने के समय 15 अगस्त, 1947 को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण किया। भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 75(1)** में कहा गया है कि प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी। मन्त्रीपरिषद् के गठन में प्रधानमंत्री स्वतंत्र होता है और वही निर्णय करता है कि मन्त्रीमण्डल में किसे सम्मिलित किया जाए और किसे नहीं। वह चाहे तो अपने दल से बाहर के किसी व्यक्ति को भी मन्त्री नियुक्त करवा सकता है। कार्यपालिका के वास्तविक प्रमुख के रूप में प्रधानमंत्री को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं।

1. किसी भी मन्त्री को पदोन्नत या पदावनत करने का अधिकार।
2. मन्त्रीमण्डल की बैठक की अध्यक्षता करने का अधिकार।
3. मन्त्रीमण्डल की समस्त गतिविधियों का संचालन करना।
4. मन्त्रीमण्डल का गठन करना।
5. लोकसभा के नेता का दायित्व निभाना।
6. मन्त्रीमण्डल द्वारा संसद का पथ–प्रदर्शन करना।
7. वार्षिक बजट के निर्माण में अहम भूमिका निभाना।
8. मन्त्रीमण्डल और राष्ट्रपति के बीच कड़ी का काम करना।

9. मन्त्रीमण्डल के निर्णयों की सूचना राष्ट्रपति को देना।

6.3 सारांश

हमारे संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश प्रणाली के अनुरूप उत्तरदायी संसदीय प्रणाली की कार्यपालिका अपनायी है और उसके अनुरूप मंत्रिमण्डलात्मक प्रणाली का प्रावधान किया है। संसदीय सरकार में राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष होता है लेकिन वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद् में निहित होती है जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। संसदीय शासन प्रणाली में प्रधानमंत्री को केन्द्रीय स्थिति होती है वह सम्पूर्ण शासन प्रणाली का मूल आधार है और राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु है प्रधानमंत्री कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष होता है इसके अतिरिक्त वह अपने दल और जनता का सर्वोच्च नेता और दे'ा का प्रमुख प्रवक्ता होता है। डॉ0 अम्बेडकर के शब्दों में वास्तव में प्रधानमंत्री सम्पूर्ण तंत्र की धुरी है। भारत में मंत्रियों की स्थिति प्रधानमंत्री के सलाहकारों जैसी होती है प्रधानमंत्री का निर्णय ही सर्वोपरि होता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रधानमंत्री के पद का महत्व उसे ग्रहण करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है।

6.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **भारतीय प्रशासनः**– प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली
2. **भारतीय प्रशासनः**– डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
3. **भारत में लोक प्रशासनः**– बाबू लाल फाड़िया, साहित्य भवन आगरा

6.5 बोध प्रश्न

1. देश का सर्वोच्च कानून है।
   (a) सर्वोच्च न्यायालय (b) संविधान
   (c) राष्ट्रपति (d) धर्म
2. भारत में राष्ट्रपति का चुनाव निम्न में से किसके द्वारा किया जाता है।
   (a) संसद (b) राज्य विधान सभायें
   (c) लोक सभा (d) संसद और राज्य विधान सभा
3. संविधान केन्द्रीय सरकार की कार्यकारिणी शक्ति निम्न में निहित करता है।
   (a) प्रधानमंत्री (b) राष्ट्रपति
   (c) मंत्रिमण्डल (d) उपर्युक्त सभी
4. मंत्रिमण्डल जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होता है निम्न में से कौन शामिल होते हैं।
   (a) केवल कैबिनेट मंत्री
   (b) कैबिनेट मंत्री और राज्य मंत्री
   (c) मंत्रियों की चारों श्रेणियां
   (d) कोई भी मंत्री जिसको प्रधानमंत्री सम्मिलित करना चाहता है।

लघुउत्तरीय प्रश्नः–

1. संवैधानिक विधि से आप क्या समझते है?
2. संविधान के मूल ढांचे में कौन–कौन से विषय आते है?
3. भारतीय संविधान में वर्णित राष्ट्रपति की शक्तियों का वर्णन कीजिए।
4. हमारा संवैधानिक संघीय ढांचा अनेका में एकता की गारंटी है, स्पष्ट करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः–

1. आधारभूत ढाँचे के सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
2. संविधान एक जीवन्त दस्तावेज है स्पष्ट करें।

इकाई–7 केन्द्रीय सचिवालय : संगठन एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 केन्द्रीय सचिवालय : संगठन एवं कार्य

7.3 सारांश

7.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.5 बोध प्रश्न

7.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि केन्द्रीय सचिवालय का संगठन किस प्रकार होता है तथा इसके महत्वपूर्ण कार्य क्या है।
- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम यह जानकारी प्राप्त करेगें कि केन्द्रीय प्रशासन केन्द्रीय सचिवालय के भूमिका क्या है तथा भारत की राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले परिर्वतनों ने केन्द्रीय सचिवालय की भूमिका को किस प्रकार प्रभावित किया है।

7.1 प्रस्तावना

भारत सरकार की शक्तियां और कार्य विभिन्न मंत्रालयों में विभाजित है। सरकारी कार्य विभाजन संविधान के **अनुच्छेद 77(3)** के तहत निर्मित कार्य संबंधी नियमों के अंतर्गत किया जाता है एवं प्रधानमंत्री के परामर्श पर राष्ट्रपति के द्वारा किया जाता है। हमारे यहां राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल केंद्रीय सरकार के प्रमुख अधिकारी हैं।यह प्रशासन के पिरामिड का शीर्ष है। मंत्रिमंडल नीति निर्धारण करने वाली सर्वोच्च संस्था है जिस को परामर्श देने के लिए दो प्रकार के स्टाफ अभिकरण हैं मंत्रिमंडल समितियां और सचिवालय । सचिवालय के तीन प्रमुख रूप है केंद्रीय सचिवालय, मंत्रिमंडल सचिवालय और प्रधानमंत्री सचिवालय।भारत में मंत्रालयों की संरचना त्रिस्तरीय है।इसमें राजनीतिक शीष पर मंत्री होता है जिसकी सहायता के लिए एक या अधिक राज्य मंत्री, उप मंत्री या संसदीय सचिव होते हैं। सचिवालयीय संगठन तथा मंत्रालय से संलग्न कार्यालय जिसका प्रमुख सचिव होता है जो स्थाई प्रशासनिक अधिकारी होता है। मंत्रालय के अधीन विभाग या विभागों के कार्यपालक संगठन होते हैं जिसके सर्वोच्च को महानिदेशक कहते हैं।

भारत में कार्यपालिका की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और समस्त कार्य उसके नाम से किए जाते हैं किंतु व्यवहार में मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका है जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। मंत्री स्वयं समस्त कार्यों को नहीं कर सकता इसके लिए उसे सहायता की आवश्यकता होती है इसलिए भारतीय प्रशासन को विभिन्न मंत्रालयों और विभागों में विभाजित किया गया है जो मिलकर केंद्रीय सचिवालय कहलाता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार–विमर्श करके जिन नीतियों का निर्माण किया जाता है उन्हें क्रियान्वित करने के लिए अनेक संलग्न अधिनस्थ तथा क्षेत्रीय कार्यालय होते हैं। संविधान द्वारा कुछ ऐसी इकाईयों की स्थापना की गई है जो मंत्रालयों तथा विभागों से स्वतंत्र रहकर अपना कार्य करती हैं जैसे चुनाव आयोग,संघ लोक सेवा आयोग आदि।इसके अतिरिक्त योजना आयोग एक स्टाफ इकाई के रूप में कार्य करता है साथ ही साथ अनेक परामर्शदात्री संस्थाएं, आयोग तथा मंडल अपने स्तर पर कार्य करते हैं और भारतीय प्रशासन के क्रियान्वयन में अपनी भूमिका अदा करते हैं।

7.2 केन्द्रीय सचिवालय

केंद्रीय सचिवालय का विकासः– भारतीय प्रशासन के संगठन के पद सोपान में केंद्रीय सचिवालय का एक संस्था के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रशासकीय संगठन का मस्तिष्क है और इसके आदेश संपूर्ण देश में प्रचलित होते

हैं किंतु अन्य प्रशासनिक संस्थाओं की तरह सचिवालय भी ब्रिटिश शासन काल की देन है। भारतीय सचिवालय स्वजातिक है। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केंद्रीय सचिवालय की एक विशेष भूमिका थी।कंपनी शासन में बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन केंद्रीय सरकार का सचिवालय गठित किया गया जिसमें 1833 चार्टर अधिनियम के तहत प्रशासनिक मितव्ययता की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किए गए।सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था राजस्व एवं वित्त विभागों को मिलाकर एक विभाग बना दिया जाना 1843 से 1919 तक सचिवालय में विभागों का गठन पुनर्गठन होता रहा और अनेक नए विभागों का निर्माण हुआ।1919 से 1947 तक का युग केंद्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

लार्ड कार्नवालिस ने सचिवालय के पुनर्गठन और शक्तिशाली बनाने की दिशा में कुछ पहल की। उसका प्रमुख योगदान महामंत्री के पद का सृजन था।इस पदाधिकारी को बाद में प्रमुख सचिव की संज्ञा दी गई। इसके हाथ में समस्त शक्तियां तथा उत्तरदायित्व थे। लार्ड वेलेजली ने भी सचिवालय के पुनर्गठन में काफी रूचि ली केंद्रीय सचिवालय के विकास में उसके सुधारों का काफी योगदान रहा उसकी योजना के अंतर्गत सचिवालय का कार्य काफी मात्रा में बढ़ गया और साथ में उत्तरदायित्व में भी वृद्धि हुई।

सचिवालय का अर्थः– सचिवालय शब्द से तात्पर्य सचिवों के कार्यालय से हैं जो मंत्री को प्रशासनिक कार्यों में आवश्यक सहायता तथा परामर्श प्रदान करता है।इस शब्द की उत्पत्ति भारतीय प्रशासन में उस समय हुई जब अंग्रेजों ने अपने उपनिवेशों में सचिवों की सरकार स्थापित की।स्वाधीनता के बाद सरकारी सत्ता जनता द्वारा निर्वाचित मंत्रियों के हाथों में आई और आज प्रशासनिक सचिव मंत्रियों के अधीन कार्य करते हैं।

केंद्रीय सरकार के तीन आवश्यक घटक है।1. मंत्रीगढ़ 2.सचिव 3. कार्यपालक प्रमुख।

1. मंत्री जो विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष होता है विभाग की नीति का व्यापक रूप से निर्धारण करता है।
2. सचिव विभाग का प्रमुख राजनीतिक अधिकारी होता है सच्ची विभाग की समस्त प्रशासनिक नीतियों एवं क्रियाकलापों पर परामर्श देने के लिए मंत्री का प्रमुख परामर्शदाता होता है उसका कर्तव्य है कि वह विषय के सभी संबंधित तथ्यों को मंत्री के समक्ष प्रस्तुत करें ताकि मंत्री उस पर उचित निर्णय ले सके।
3. कार्यपालक प्रमुख का कार्य निर्णयों तथा नीतियों को लागू करना है मंत्री तथा सचिव सचिवालय के अभिन्न अंग हैं। सचिवालय से जो आदेश तथा सूचना प्रसारित होते हैं वे भारत सरकार के आदेश माने जाते हैं।इस प्रकार केंद्रीय सचिवालय का प्रशासनिक सोपान में महत्वपूर्ण स्थान होता है।वास्तव में केंद्रीय सरकार के विभिन्न विभागों और मंत्रालयों का जमघट ही सचिवालय है।

भारत में केंद्रीय सरकार का केंद्रीय सचिवालय आजकल कार्यकारी प्रकृति का काफी कार्य करने लगा है। सचिवालय वास्तव में प्रशासन का मस्तिष्क है जो समस्त शासकीय क्रियाकलापों को संचालित एवं नियंत्रित करता है।सचिवालय ही दक्ष कर्मचारी प्रदान करता है जो नीतियों तथा कार्यक्रमों के प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वयन के लिए अपरिहार्य होते हैं। जब कोई नीति स्वीकार की जाती है तो उस नीति के निष्पादन पर निरंतर ध्यान रखना सचिवालय का ही काम है। इसलिए इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं है कि ''सचिवालय ही सरकार है।''

सचिवालय की भूमिकाः– सचिवालय एक ऐसा संगठन है जो सरकार को उसके उत्तरदायित्व निभाने में सहायक होता है सचिवालय की कुशल प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निम्नलिखित हैः–

1. यह मंत्रियों को सरकारी नीति निर्माण में सहायता प्रदान करता है ।
2. सरकार एक व्यापक कार्यक्रम के आधार पर सत्ता में आती है जिनका वचन उन्होंने जनता को चुनाव के समय दिया था इन व्यापक कार्यक्रमों को कार्य योग बनाने के लिए इन्हें सारऔर रूप देना पड़ता है।मंत्रियों को ऐसे विषयों व ऐसी समस्याओं के संबंध में भी नीति बनानी पड़ती है जिनका घोषणापत्र में कहीं भी आभास नहीं था। नीति निर्माण के पूर्व पर्याप्त आकड़े तथा अन्य सूचना आवश्यक होती है सचिवालयइन्हें उपलब्ध कराता है तथा मंत्रियों को उनके व्यवस्थापन कार्य में भी सहायता प्रदान करता है साथ ही सचिवालय विधेयकों के मसौदे तैयार करता है संसदीय प्रश्नों के लिए आवश्यक सूचना एकत्रित करता है।
3. सचिवालय एक संस्थागत स्मृति भंडार है जिसकी सहायता से सरकार भर्ती हुई समस्याओं का विश्लेषण पूर्व

दृष्टांत और भूत कालीन प्रथाओं के प्रकाश में करती हैं। इस प्रकार का परीक्षण निरंतरता और समरसता के लिए आवश्यक होता है।

4. यह एक समस्या की विस्तार पूर्वक जांच करने के लिए इस पर एक सर्वग्राही व पूर्ण दृष्टिकोण उपलब्ध कराता है।

5. यह राज्यों के बीच विभिन्न अभिकरणों जैसे योजना आयोग वित्त आयोग के बीच संचार का माध्यम है।

6. सचिवालय यह भी देखता है कि क्षेत्रीय कार्यालय सरकार की नीतियों और निर्णयों को कुशलता पूर्वक एवं मितव्यता के साथ लागू करते हैं या नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सचिवालय प्रशासन के लिए एक अनिवार्य संस्था है यह सरकार का वास्तव में नाड़ी केंद्र है।

केंद्रीय सचिवालय का संगठनः— केंद्रीय सचिवालय में अनेक मंत्रालय और विभाग हैं जिनकी संख्या घटती बढ़ती है। मंत्रालय विभाग में, विभाग प्रभाग में, प्रभाग शाखा में और शाखा अनुभागों में विभक्त है। मंत्रालय विभाग का प्रशासकीय अध्यक्ष सचिव होता है।प्रत्येक उपविभाग का प्रमुख अधिकारी संयुक्त अथवा अतिरिक्त सचिव होता है।उपविभाग सामान्यता दो प्रभागो में विभक्त होता है जिसके अधिकारी उप सचिव होते हैं।प्रत्येक उपविभाग में सामान्यता दो शाखाएं होती है। शाखा का अधिकारी अवर सचिव कहलाता है एक शाखा में सामान्यता दोनों अनुभाग होते हैं अनुभाग का प्रमुख अनुभाग अधिकारी कहलाता है। प्रत्येक अनुभाग में सहायक लिपिक, टंकणकर्ता आदि कर्मचारी होते हैं।मंत्रालय अपने विभाग से संबंधित कार्यों को संपन्न करता है तथा नीतियों का निर्माण करता है।मंत्रालय का आंतरिक संगठन निम्नप्रकार होता हैः—

विभाग : सचिव/अतिरिक्त/विशेष सचिव

उपविभाग : संयुक्त/अतिरिक्त सचिव

प्रभाग : निदेशक/उप सचिव

शाखा : अवर सचिव

अनुभाग (सेक्शन) : सेक्शन अधिकारी

केंद्रीय सचिवालय में दो प्रकार के कर्मचारी कार्य करते हैं प्रथम अधिकारी वर्ग और दूसरा अधीनस्थ वर्ग।प्रथम वर्ग में सचिव उप सचिव तथा अवर सचिव आते हैं यदि विभाग बड़ा है तो संयुक्त सचिव या अतिरिक्त सचिव भी होते हैं जिन्हें विभाग के किसी भी अंग का कार्य सौंपा जाता है वह अपने क्षेत्र में आने वाले सभी विषयों के संबंध में मंत्री से सीधा संपर्क रखते हैं संयुक्त या अतिरिक्त सचिव का स्तर लगभग सचिव के स्तर के समान होता है वह कार्यभार से बोझिल सचिव का बोझ हल्का करते हैं। संयुक्त तथा अतिरिक्त सचिव से आशा की जाती है कि वे महत्वपूर्ण मामलों पर मुख्य सचिव से परामर्श लेते रहें। अधिकारी वर्ग में प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं इन अधिकारियों की भर्ती केंद्रीय सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों की भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में से कार्यकाल पद्धति के (Tenure System) अंतर्गत की जाती है। इस प्रणाली का प्रारंभ लॉर्ड कर्जन ने 1905 में किया था।

कार्यकाल पद्धति के मुख्य लक्षण है प्रथम भारत सरकार के सचिवालय में कर्मचारियों की भर्ती सीधे ना होकर प्रांतों में सेवारत अधिकारियों में से होनी चाहिए। दूसरा केंद्रीय सचिवालय के कार्यकाल तथा राज्यों में उस पद के कार्यकाल के बीच एक नियमित अंतर बना रहना चाहिए। इस प्रणाली के अंतर्गत नीति निर्धारण में संलग्न अधिकारियों को उन परिस्थितियों का सर्वोत्तम ज्ञान होता है जिनके अधीन नीतियां लागू की जाती हैं। परिणामतः नीति निर्धारण यथार्थ के अधिक निकट रहता है फिर भी कार्यकाल पद्धति का क्षेत्र सीमित है क्योंकि कुल विभागों की अपनी पृथक सेवाएं होती हैं जैसे विदेश मंत्रालय भारतीय विदेश सेवा में से ही अपने अधिकारियों की भर्ती करता है।

1957 से केंद्रीय सचिवालय के उच्चतर अधिकारियों की नियुक्ति हेतु केंद्रीय स्टाफिंग योजना आरंभ की गई है। इस योजना के अंतर्गत उप सचिव एवं उसके ऊपर के पदों को भरने का तरीका शामिल है।इस योजना के

अंतर्गत केंद्रीय सचिवालय में वरिष्ठ पदों को निम्नलिखित श्रेणियों से भरा जाता है।

1. राज्यों के अखिल भारतीय सेवा संघ वर्ग एवं राज्य सिविल सेवा के प्रथम श्रेणी अधिकारियों को कार्यकाल पद्धति के आधार पर लेना।
2. केंद्रीय सेवा वर्ग का से तथा सार्वजनिक उद्यमों में कार्य करने वाले उच्च श्रेणी अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति पर कार्यकाल पद्धति के आधार पर लेना।
3. केंद्रीय सचिवालय सेवा के अधिकारी।
4. राज्य सिविल सेवा के वे अधिकारी जिनका नाम विशेष चयन सूची में उल्लेखित हो।
5. राज्य सिविल सेवा के कतिपय अधिकारियों को संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श (उनको छोड़कर जिनका उल्लेख दा में किया गया है)से लेना।

उप सचिव अवर सचिव तथा निदेशक व उसके ऊपर के पदों के लिए प्रतिनियुक्तियों का कार्यकाल 3 से 5 वर्ष होता है। केंद्रीय सरकार में प्रतिनियुक्ति के सभी पदों को भरने के लिए वरिष्ठ चयन मंडल तथा केंद्रीय स्थापना मंडल से परामर्श किया जाता है।संयुक्त सचिव और उसके ऊपर के पदों पर नियुक्ति के लिए वरिष्ठ चयन बोर्ड तथा अवर सचिव से ऊपर एवं संयुक्त सचिव से नीचे के स्तर के पदों पर नियुक्ति के लिए केंद्रीय स्थापना बोर्ड अनुशंसा करता है।

सचिवः— सचिव विभाग/मंत्रालय का प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी होता है सचिव विभाग के समस्त प्रशासनिक क्रियाकलापों तथा नीतियों पर परामर्श देने के लिए मंत्री का प्रधान परामर्शदाता होता है उसका कर्तव्य है कि वह विषय के सभी संबंध तथ्यों को मंत्री के समक्ष प्रस्तुत करें ताकि मंत्री उस पर उचित निर्णय ले सके या आवश्यक है कि वह अपने मंत्री को पूर्ण सूचना देता रहे सचिव को निर्भय होकर अपने विचार प्रस्तुत करना चाहिए।परामर्श संकेत एवं प्रोत्साहन देना तथा समझाना उसका कर्तव्य तथा अधिकार दोनों हैं। प्रशासनिक सुधार आयोग ने सचिव की भूमिका के संबंध में लिखा है कि वह समन्वय कर्ता, नीति परामर्शदाता, समीक्षाकर्ता और मूल्यांकनकर्ता है।

सचिव का उत्तरदायित्वः—

1. वह अपने विभाग का प्रशासन कुशलता से तथा मितव्यता पूर्वक चलाएं।
2. सचिव ही संसद की सार्वजनिक लेखा समिति के समक्ष अपने विभाग का प्रतिनिधित्व करता है।
3. वह विभाग के कार्यकलापों में अपने विभाग का प्रतिनिधित्व करता है तथा विभाग के कार्यकलापों से अपने आपको परिचित रखता है।
4. वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा निपटाए गए मामलों की संख्या एवं प्रकृति के संबंध में साप्ताहिक प्रतिवेदन प्राप्त करता है।

श्री आयंगर ने लिखा है ''सचिव को फाइलों में डूबा हुआ नहीं रहना चाहिए और ना ही सामान्य कार्यों में व्यस्त रहना चाहिए। उसे सौपे गए उत्तरदायित्व के क्षेत्र में समस्याओं का निदान खोजने और आगामी योजना बनाने तथा समस्याओं के निराकरण के साधनों पर विचार करना चाहिए। ताकि प्रशासनिक कुशलता बनी रहेइस दिशा में कार्य न करने की असफलता की पूर्ति उनके अंतर्गत कर्मचारियों की संख्या बढ़ाकर संभव नहीं है।''

केंद्रीय सचिवालय के किसी किसी मंत्रालय में एक से अधिक सचिव होते हैं सभी सचिव लगभग समान वेतन पाते हैं लेकिन भी समान दर्जे के नहीं होते हैं। एक सचिव मंत्रालय का सचिव होता है जबकि अन्य सचिव मंत्रालय में विभिन्न विभागों के सचिव होते हैं और वे मंत्रालय के अधीन रहकर कार्य करते हैं।

विशेष सचिवः— स्वतंत्रता के उपरांत सत्ता के नवीन स्तर स्थापित करने के फलस्वरूप मौलिक सोपान में व्यवधान उत्पन्न हुआ है।इसका उसकी एकता कुशलता तथा प्रभावशीलता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है विशेष सचिव का पद इस व्यवधान का अच्छा उदाहरण है। 1951 में सर्वप्रथम कृषि मंत्रालय में विशेष सचिव की नियुक्ति की गई थी। वह वेतन पद तथा सत्ता में सचिव के समकक्ष था। यह पद अपने आप में अद्वितीय था जिसकी स्थापना के ना तो कोई सिद्धांत थे और ना ही सचिव के साथ उसके संबंधों का वर्णन। आगे चलकर अन्य मंत्रालयों में भी विशेष सचिव के

पद की स्थापना की गई। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पद की स्थापना के निश्चित नियम नहीं है। आज केंद्रीय सरकार के साथ–साथ राज्य सचिवालय में भी विशेष सचिव के पद विद्यमान है।

अतिरिक्त सचिवः– प्रारंभ में सचिव के बाद प्रशासनिक पद सोपान में उप सचिव का स्थान होता था।परंतु संयुक्त तथा अतिरिक्त सचिव पद की स्थापना से पद सोपान की वरिष्ठता सूची में अंतर आया है।प्रशासनिक सुधार संबंधी अधिकार समितियों ने इस पद की समाप्ति या उनके पदों में कमी करने की अनुशंसा की। किंतु इसके उपरांत भी यह पद आज तक अस्तित्व में है। इस पद की स्थापना का प्रारंभिक उद्देश्य सचिव के कार्य भार में सहायता प्रदान करना था किंतु आगे चलकर संयुक्त सचिव का पदोन्नति के रूप में उपयोग होने लगा और उसके पद तथा वेतन में वृद्धि हुई। अतिरिक्त सचिव किस प्रशासनिक इकाई में कार्य करेंगे यह निश्चित नहीं है कभी–कभी वह विभाग के प्रभारी के रूप सचिव के कार्य को करता है तो कभी विभाग की एक शाखा में संयुक्त सचिव के रूप में कार्य करता है।तो कभी विशिष्ट कार्य में सचिव के सहायक के रूप में कार्य करता है। आज स्थिति यह है कि सचिवालय के पद सोपान में उसका स्थान सुनिश्चित है बड़े मंत्रालयों में अतिरिक्त सचिव, सचिव के कार्यों में महत्वपूर्ण परामर्श एवं सहायता प्रदान करता है।

संयुक्त सचिवः– जब किसी मंत्रालय का कार्य अधिक बढ़ जाता है और सचिव कार्य के बोझ से दबा रहता है तब उसके कार्य में सहायता के लिए एक या अधिक शाखाओं की स्थापना की जाती है। संयुक्त सचिव स्वतंत्र रूप से शाखा का प्रमुख होता है और वह सौपे गए कार्यों को करने में सक्षम होता है। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से यह उचित प्रतीत होता है इस पद की स्थापना 1920 के प्रारंभिक वर्षों में तीन कारणों से की गई थी ।

1. विभाग के कार्य में वृद्धि के कारण सचिव द्वारा बढ़े हुए कार्यों को करने में कठिनाई का होना।
2. विभिन्न कार्यों को एक सचिव के अधीन करने में कठिनाई।
3. 1920 में केंद्र में संसद में दो सदनों की स्थापना के कारण दोनों सदनों में विधायिका के कार्यों में सदस्यों की सहायता के लिए वरिष्ठ अधिकारी की उपस्थिति की अनिवार्यता के कारण।वास्तविकता यह है कि प्रशासनिक संगठन में यह पद भी निश्चित हो गया है।

निदेशकः– यह पद अपेक्षाकृत नवीन है और इसकी स्थापना 1960 में हुई यह पद कुछ अधिकारियों के अहम की संतुष्टि के लिए सृजित किया गया है जहां तक उत्तरदायित्व का प्रश्न है यह उपसचिव के समकक्ष होता है।

उपसचिवः– यह सचिव की ओर से कार्य करता है सचिवालय में उपसचिव का महत्व होता है और वह एक डिवीजन का प्रभारी होता है। इससे संबंधित कार्यों के प्रति वह उत्तरदाई होता है संयुक्त सचिव तथा अतिरिक्त सचिवों के कारण इस पद की गरिमा में कमी हुई है।

अवर सचिवः– मंत्रालय की एक शाखा का प्रभारी होता है और अपने कार्य क्षेत्र में अनुशासन बनाए रखने के लिए उत्तरदाई होता है छोटे–छोटे मामलों को यह स्वयं निपटाता है उप सचिव के कार्य को हल्का करना इसका एक प्रमुख कार्य है।

विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी (ओ0एस0डी0):– प्रशासनिक कार्य अथवा अप्रत्याशित आपात स्थिति में व्यक्ति विशेष को स्थान देने के लिए प्राचीन काल से ही ओ0एस0डी0 की व्यवस्था प्रचलित है। व्यवहारिक प्रशासन में उपयोगिता के आधार पर इन्हें बनाए रखा जाता है। इस पद की स्थापना वास्तव में दो पृथक मापदंडों के आधार पर की गई थी। प्रथम विशेष कर्तव्य पर पदस्थ अधिकारी पर होने वाले व्यय की तुलना में, अधिकारी द्वारा, हमारे आदेश के अंतर्गत प्रस्तुत प्रस्ताव एवं कार्य के फल स्वरुप बहुत अधिक मितव्ययता लाई जा सकती है। दूसरा बड़े स्टाफ के हित के लिए पदांकन के लिए अनिवार्यता होती है तभी नियुक्ति की जाती है। एक अधिकारी कर्मचारियों की सेवा स्थिति के निकट संपर्क के आधार पर ही उनकी प्रथम दृष्ट्या जानकारी प्राप्त कर शासन को उपलब्ध कराता है। यह द्वितीय श्रेणी है और कभी–कभी अधिकारियों को दोनों ही कर्तव्यों पर लगाया जाता है।

7.3 सारांश

केन्द्रीय सचिवालय संघीय सरकार का प्रमुख कार्यपालक यंत्र है और केन्द्रीय विषयों के प्रशासन के प्रति उत्तरादायी होता है। राष्ट्रीय महत्व के विषय में समन्वय तथा विदेश, आर्थिक और वित्तीय नीतियों में सहायता

प्रदान करता है।'' संक्षेप में, एक ओर सचिवालय नीति–निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियन्त्रक निकाय है, तो दूसरी ओर वह सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय भी है। भारत मेंसंसदीय प्रणाली होने के कारण सचिवालय मन्त्री को परामर्श देने के साथ–साथ संसद में की गयी आलोचनाओं और प्रश्नों की बौछार से रक्षा में उसकी सहायता के लिए आवश्यक आँकड़ें, तथ्य एवं जानकारी उपलब्ध कराता है, जिसके आधार पर मन्त्री अपने आलोचकों को उत्तर देता है। जनता अपनी शिकायतों को मन्त्री के समक्ष प्रस्तुत करती है और मन्त्री उनके समाधान हेतु प्रयास करता है। सचिवालय विरोधी दल, दबाव–समूह और समाचार–पत्रों की आलोचना के संदर्भ में नीतियों की रक्षा करता है और न्यायोचित पक्ष प्रस्तुत करता है। संघीय व्यवस्था के कारण राज्य सरकारों के कार्यों में समन्वय स्थापित करने का कार्य भी केन्द्रीय सचिवालय द्वारा किया जाता है। जो अधिक महत्वपूर्ण है, राष्ट्रीय घोषित ध्येयों और संविधान को निष्ठापूर्वक लागू करने का दायित्व विशेषतः केन्द्रीय सरकार का होता है। इन कारणों से सचिवालय के कार्यों तथा उत्तरदायित्वों में अपार वृद्धि हुई हैं और वह सत्ता का केन्द्र बन गया है।

भारत में सचिवालय प्रशासन की रीढ़ है किन्तु कभी–कभी अपनी कार्यप्रणाली के चलते वह आलोचनाओं का शिकार बनता रहा है जैसे कि सचिवालय का अनावश्यक रूप से बढ़ता हुआ आकार तथा इसमें कर्मचारियों की बढ़ती हुयी संख्या के कारण यह भीड़ भरा संगठन बनकर रह जाता है। भारत सरकार सचिवालय के दोषो को दूर करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रही है निर्णय प्रक्रिया में पद सोपान की संख्या कम करने की दिशा में कदम उठायें गये हैं। निम्न स्तर पर प्रशासनिक कुशलता लाने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है। सचिवालय की कार्यपद्धति को सरल और गतिमान बनाने के भी निरन्तर प्रयास किए जाते रहे हैं तथा लाल फीता शाही को समाप्त करने पर भी जोर दिया जाता रहा है।

7.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **भारतीय प्रशासनः**– प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली
2. **भारतीय प्रशासनः**– डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
3. **भारत में लोक प्रशासनः**– बाबू लाल फाड़िया, साहित्य भवन आगरा।
4. **आधुनिक लोक प्रशासनः**– आर0के0 दूबे, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

7.5 बोध प्रश्न

1. केन्द्रीय सचिवालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य निम्न में से कौन सा है।
   (i) नीति निर्धारण कार्य में मंत्री की सहायता करना।
   (ii) नियमों तथा विधान की ढांचागत तैयारी।
   (iii) नीतियों की व्याख्या करना और उनमें तालमेल बैठाना।
   (iv) बजट से जुड़े कार्य और व्यय पर नियंत्रण।
2. निम्न में से कौन सरकार का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है।
   (i) भारतीय प्रशासनिक सेवा
   (ii) मंत्रिमण्डल
   (iii) सुप्रीम कोर्ट
   (iv) संसद
3. संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक गड़बड़ी से प्रत्येक राज्य की रक्षा करे ऐसा प्रावधान भारतीय संविधान के निम्न अनुच्छेदों में से किस एक में है।
   (i) अनुच्छेद 325

(ii) अनुच्छेद 355

(iii) अनुच्छेद 215

(iv) अनुच्छेद 275

4. निम्नलिखित में से किस देश के प्रतिरूप पर भारतीय संघ प्रणाली आधारित है।

(i) कनाडा

(ii) रूस

(iii) अमेरिका

(iv) स्विट्जरलैंड

लघुउत्तरीय प्रश्नः–

1. केन्द्रीय सचिवालय की प्रमुख विशेषताएं क्या है।
2. केन्द्रीय सचिवलय के प्रमुख कार्यों का वर्णन करिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः–

1. केन्द्रीय सचिवालय का संगठन एवं भूमिका बताइए।
2. केन्द्रीय सचिवालय के अधिकारी वर्ग की श्रेणियों का वर्णन करते हुए उनके कार्यालयी संगठन के बारे में बताइए।

इकाई–8 प्रधानमंत्री कार्यालय और मंत्रिमण्डल सचिवालय

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रधानमंत्री कार्यालय

8.3 मंत्रिमण्डल सचिवालय

8.4 सारांश

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.6 बोध प्रश्न

8.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य भारत में मत्रिमण्डल सचिवालय के विकास और उसके संगठन व कार्यों की जानकारी प्राप्त करना है।
- इस इकाई के अन्तर्गत हम प्रधानमंत्री कार्यालय के संगठनात्मक स्वरूप तथा उसकी शक्तियों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से हम स्वतंत्रता के बाद से अब तक भारत की राजनीतिक व्यवस्था में प्रधानमंत्री कार्यालय की उत्तरोत्तर बदलती हुयी भूमिका के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.1 प्रस्तावना

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यवहार में समस्त शक्तियों तथा उत्तरदायित्वों का केंद्र प्रधानमंत्री होता है। पिछले 75 वर्षों से भारतीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री मुख्य कार्यपालिका एवं प्रशासक, मुख्य नीति निर्माता, मुख्य राजनयिक के रूप में राष्ट्र के समक्ष उपस्थित हुआ है। प्रधानमंत्री को शासकीय कार्यों में कार्यालय सहायता प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की है जो आगे चलकर प्रधानमंत्री सचिवालय में परिवर्तित हो गया। आज भारतीय प्रशासन एवं राजनीति के क्षेत्र में प्रधानमंत्री सचिवालय का ना केवल महत्व बढ़ा है अपितु उसकी अहम भूमिका भी है।

1961 के कार्य–विभाजन नियमों के तहत प्रधानमंत्री सचिवालय को भारत सरकार के एक विभाग के रूप में दर्जा प्रदान किया गया उसके अधीन कोई अधीनस्थ कार्यालय नहीं है शासकीय दृष्टि के रूप में यह कार्यालय प्रधानमंत्री और उसके मंत्रियों राष्ट्रपति ,राज्यपाल, मुख्यमंत्री और विदेशी प्रतिनिधियों के बीच एक कड़ी है सार्वजनिक रूप में यह दलीय कार्यों, निजी पत्राचार, जनता की शिकायतों आदि कार्यों से संबंधित है।

ब्रिटेन में प्रधानमंत्री के निजी सचिवालय का प्रारंभ 1939 में प्रधानमंत्री चर्चिल द्वारा किया गया था। 15 अगस्त 1947 को भारत के स्वतंत्र होने पर प्रधानमंत्री के कार्यालय की स्थापना हुई। इस सचिवालय का निर्माण उन समस्त कार्यों का संपादन करने के उद्देश्य से किया गया जिन्हें 15 अगस्त 1947 के पूर्व गवर्नर जनरल के सचिव (व्यक्तिगत) द्वारा किया जाता था। स्मरणीय है कि भारत के प्रधानमंत्री ने भी 15 अगस्त से वे सभी कार्य अपने हाथों में ले लिए जो 15 अगस्त 1947 के पूर्व गवर्नर जनरल सरकार की कार्यपालिका के प्रमुख के रूप में किया करता था।

आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ संबंध है। नेहरू के कार्यकाल में या सचिवालय छोटा था तथा इससे निर्णयकारी भूमिका प्राप्त नहीं थी। परंतु शास्त्री जी के संक्षिप्त कार्यकाल में इस कार्यालय का प्रभाव और महत्व बढ़ गया। श्रीमती इंदिरा गांधी के 1977 तक के प्रधानमंत्री में इसने शासन के

शीर्षस्थ निर्णय केंद्र का स्थान प्राप्त कर लिया था। इसके दुष्परिणाम आंतरिक आपातकाल में भली प्रकार स्पष्ट हो गए थे इस सचिवालय द्वारा इस काल में भारत सरकार के रूप में किए गए कार्य और सभी शासकीय विभागों की स्थिति इस सचिवालय के समक्ष नगर हो गई थी परंतु मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता दल के शासनकाल में इसके अत्यधिक बढ़े हुए महत्व को कम करने के लिए कार्यवाही की गई तथा 1977 में इसका नाम बदलकर प्रधानमंत्री कार्यालय कर दिया गया गांधी 1980 में पुनः सत्तारूढ़ हुई पर प्रधानमंत्री कार्यालय पहले जैसा प्रबल नहीं हो पाया।

8.2 प्रधानमंत्री कार्यालय

प्रधानमंत्री कार्यालय का संगठनः— प्रधानमंत्री कार्यलय प्रधानमंत्री को सचिवालय वाली सहायता प्रदान करता है। उसका प्रमुख प्रधान सचिव कहलाता है जो पी एम ओ का सर्वोच्च अधिकारी होता है। उसे सहायता देने के लिए सचिव अतिरिक्त, संयुक्त सचिव निदेशक, लिपिक तथा चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी कार्यरत है पीएमओ का संगठनात्मक ढांचा निम्न प्रकार हैः—

1. सचिव पीएमओ के प्रमुख होने के नाते समस्त सरकारी फाइलों को देखते हैं तथा प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए अन्य कार्यों को भी देखते हैं वाजपेई जी के शासन में ब्रजेश मिश्र पीएमओ में सबसे सशक्त व्यक्ति तथा प्रधानमंत्री के सबसे विश्वसनीय सलाहकार माने जाते थे जो प्रधानमंत्री के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार भी थे।
2. अतिरिक्त सचिव प्रधानमंत्री के आदेश पर विभिन्न मंत्रालयों के व्यक्तिगत और नीति संबंधी विषयों को देखते हैं।
3. संयुक्त सचिव (I) ग्रह कानून और न्याय मामलों को देखते हैं।
4. संयुक्त सचिव (II) प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रशासन के साथ—साथ रेलवे नागरिक उड्डयन और संचार मामलों को देखता है।
5. संयुक्त सचिव (III) या विदेश मंत्रालय रक्षा तथा आपूर्ति ऊर्जा कार्यों को देखता है।
6. निदेशक (I) ग्रामीण विकास तथा नागरिक आपूर्ति कार्यों को देखता है।
7. निदेशक (II) गृह को देखता है।
8. निदेशक (III) कोई निश्चित कार्य नहीं करता।
9. निदेशक (IV) विभिन्न राज्यों के कार्यों को विशेषकर उत्तर पूर्वी राज्यों के कार्यों को देखता है।

उपर्युक्त अधिकारियों के अतिरिक्त अनेक प्रथम श्रेणी द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी पीएमओ में कार्यरत हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय में भ्रष्टाचार तथा जन शिकायतों से निपटने के लिए यूनिट और खंड की स्थापना की गई हैं क्योंकि प्रधानमंत्री योजना आयोग का अध्यक्ष होता है अतः उससे संबंधित पहले प्रधानमंत्री की टीम के लिए पीएमओ में प्रेषित की जाती है।

निम्न महत्वपूर्ण विषयों जिनमें प्रधानमंत्री को विशिष्ट जानकारी की आवश्यकता होती है पीएमओ में उपलब्ध कराई जाती हैं—

1. महत्वपूर्ण रक्षा संबंधी विषय।
2. नागरिक और सैनिक अलंकरण जिनमें राष्ट्रपति की स्वीकृति की आवश्यकता है।
3. समस्त महत्वपूर्ण नीति संबंधी विषय।
4. विदेशों में भारतीय शिष्टमंडल के नियुक्ति संबंधी प्रस्ताव।
5. मंत्रिमंडल सचिवालय से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय।
6. केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण संघ लोक सेवा आयोग निर्वाचन आयोग अन्य संवैधानिक समितियों के सदस्यों की नियुक्ति संबंधी जानकारी।

7. प्रशासनिक सुधार एवं लोक सेवा के नीतिगत विषयों की जानकारी।
8. राज्यों के लिए प्रधानमंत्री द्वारा विशेष राहत या मदद संबंधी घोषणा।
9. समस्त न्यायिक नियुक्तियां जिनके लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक होती है।

प्रधानमंत्री कोषः— प्रधानमंत्री राष्ट्रीय राहत कोष और राष्ट्रीय सुरक्षा कोष प्रधानमंत्री कार्यालय से संचालित होते हैं। वैधानिक अथवा सांविधानिक स्पष्ट करें।

प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्यः— प्रधानमंत्री के दिन प्रतिदिन के कार्यों को संपन्न करने में सहायता प्रदान करना पीएमओ का मुख्य कार्य है ।केंद्रीय मंत्रियों राष्ट्रपति राज्यपाल और मुख्यमंत्री और विदेशी प्रतिनिधियों से संपर्क स्थापित करने में या कार्यालय प्रधानमंत्री को सहायता प्रदान करना है। जनता द्वारा प्राप्त शिकायतों के निराकरण में भी पीएमओ प्रधानमंत्री की सहायता करता है प्रधानमंत्री के आवश्यक रिकॉर्ड रखना उसके अतिथियों का स्वागत सत्कार करने की व्यवस्था करना तथा प्रधानमंत्री द्वारा मांगी गई सूचना उपलब्ध कराना कि सचिवालय का उत्तरदायित्व है।

प्रधानमंत्री के आदेश तथा सूचना को मंत्रिमंडल सचिवालय को सूचित करना इसी सचिवालय का कार्य है वर्तमान में यह सचिवालय प्रधानमंत्री के महत्वपूर्ण भाषण तैयार करने राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था की देखभाल करने प्रधानमंत्री की विदेश यात्रा के कार्यक्रम बनाने आदि का भी कार्य करने लगा है।

साधारण प्रधानमंत्री सचिवालय के क्षेत्राधिकार में भी सभी विषय आते हैं जो किसी व्यक्तिगत विभागमंत्रालय को नहीं सौंपा गया है। इस सचिवालय के लिए यह सुविधाजनक है कि संसद में पूछे गए सामान्य विषयों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर तैयार करें जिन्हें किसी मंत्रालय को नहीं सौंपा गया है अथवा उनका स्पष्ट वर्गीकरण नहीं किया गया है उड़ान मंत्री कार्यालय के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है।

1. उन समस्त संदर्भों को देखना जिनका संबंध प्रधानमंत्री के साथ कार्य तथा व्यापार के नियमों के अंतर्गत आता है एवं जो प्रधानमंत्री के पास है।
2. मुख्य कार्यपालिका के रूप में प्रधानमंत्री के समस्त उत्तरदायित्व को पूर्ण करने में सहायता प्रदान करना।
3. प्रधानमंत्री को योजना आयोग के अध्यक्ष के रूप में उत्तरदायित्व निभाने में सहायता करना।
4. प्रधानमंत्री के जनसंपर्क के कार्य में सहयोग प्रदान करें साथ में प्रश्न एवं जनता से संपर्क करना है इसी का कार्य है।
5. प्रधानमंत्री को भेजे गए प्रकरणों के परीक्षण में सहायता देना।
6. कार्य व्यापार नियमों के तहत प्रधानमंत्री के अधीन केंद्रीय सरकार के कुछ विभागों और मंत्रालयों का प्रत्यक्ष दायित्व होता है और विभागों के कुशल संचालन का दायित्व प्रधानमंत्री के कंधों पर होता है इस कार्य में यह कार्यालय प्रधानमंत्री को सचिवालयीय सहायता प्रदान करता है।
7. भारत में आए दिन किसी न किसी क्षेत्र में बाढ़ सूखा, भूकंप ,महामारी आदि अनेक प्रकार की घटनाओं का सामना करना पड़ता है विपत्ति की घड़ी में राज्य नागरिकों को आर्थिक सहायता पहुंचाने के लिए प्रधानमंत्री कोष की स्थापना की गई है इस कोष का संचालन पीएमओ द्वारा ही किया जाता है और यह कार्यालय सहायता देने की राशि का पूरा हिसाब रखता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय को उसकी सार्वजनिक क्रियाओं में तथा शासन के प्रधान के रूप में किए गए कार्यों में प्रशासन की सामान्य संरचना एवं निर्धारित कार्य पद्धति के अधीन सहायता देता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिकाः— स्वतंत्रता के पूर्व गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद को सच वाली सहायता गवर्नर जनरल (व्यक्तिगत) सचिव द्वारा प्रदान की जाती थी। उस समय सचिवालय का आकार छोटा था और कार्य भी सीमित है किंतु स्वतंत्रता के पश्चात प्रधानमंत्री सचिवालय का महत्व बड़ा प्रधानमंत्री कार्यालय जिससे 1977 के पूर्व प्रधानमंत्री सचिवालय कहा जाता था वह पंडित नेहरू के प्रधानमंत्री काल में एक सामान्य संस्था थी नेहरू के कार्यकाल में पीएमओ की शक्ति कम थी और उसकी भूमिका भी सीमित थी महत्व की दृष्टि से या

कार्यालय कैबिनेट सचिवालय के बाद आता था प्रधानमंत्री सचिवालय की वर्णनात्मक समितियां के अनुसार प्रधानमंत्री सचिवालय प्रधानमंत्री की सहायताआधिकारिक दिशा में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रियों राष्ट्रपति राज्यपाल और विदेशी प्रतिनिधियों के साथ संपर्क में तथा गैर आधिकारिक दिशा में साधारण जनता से आने वाली शिकायतें जो प्रधानमंत्री को मंत्रिमंडल का प्रमुख होने के नाते भेजी जाती है में उसकी सहायता करना है।

प्रधानमंत्री कार्यालय भारत सरकार की विशिष्ट वसीयत का हकदार नहीं है लेकिन इसका निर्माण संसद के प्रश्नों का उत्तर देने के उद्देश्य से प्रधानमंत्री सचिवालय में कुछ बहुत सामान्य विषयों पर जिन्हें किसी विशेष मंत्रालय को नहीं भेजा गया था सामंजस्य करना अधिक सरल होता है।प्रारंभ में पंडित नेहरू ने श्री आयंगर को प्रधानमंत्री सचिवालय का प्रथम निजी सचिव नियुक्त किया था श्री आयंगर भारतीय नागरिक सेवा के वरिष्ठ तथा कुशल अधिकारी थे उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था कैबिनेट की बैठक में सम्मिलित होने की परंपरा का श्रीगणेश आयंगर नहीं किया था आगे चलकर आर्मी को एक विशेष सहायक के रूप में नियुक्त करने से संख्या 2 हो गई एक समय धर्मवीर आईपीएस अधिकारी उनके निजी सचिव तथा मंत्रिमंडल सचिव थे 1954 में इसमें एक प्रमुख निजी सचिव और 3 सहायक निजी सचिव और लिपिक वर्ग के कर्मचारी थे। नेहरू मंत्रिमंडल सचिवालय तथा विभागीय मंत्रियों के माध्यम से कार्य करते थे उनके कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय शक्तिशाली नहीं बन सका।

शक्तिशाली प्रधानमंत्री कार्यालय का आरंभ नेहरू के उत्तराधिकारी श्री लाल बहादुर शास्त्री के संक्षिप्त प्रधानमंत्री के कार्यकाल में देखा जा सकता है शास्त्री जी को कभी भी एक जन राजनेता नहीं माना गया था। साथ ही इतने चमत्कारिक विशाल काए नेतृत्व के उत्तराधिकारी के लिए रिक्त स्थान की पूर्ति कर पाना संभव नहीं था। उस समय शास्त्री जी की सहायता के लिए एक सुद्रण संस्था की आवश्यकता थी। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने नागरिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी को प्रधानमंत्री कार्यालय का सचिव नियुक्त किया। श्री झा के प्रभावशाली एवं गतिशील नेतृत्व ने प्रधानमंत्री कार्यालय की प्रतिष्ठा और कद को ऊंचा किया तथा उसके दायित्वों में वृद्धि की कार्यालय एक ऐसेनियमित विभाग के रूप में अवतरित हुआ जिसका प्रमुख एक पूर्णकालिक सचिव होता था। जिससे नीति निर्माण में इसका प्रभाव बढ़ने लगा। झा ने ना केवल प्रधानमंत्री के सूचना स्रोत वरन् समस्त निर्णय प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त कर ली उनके समय में प्रशासनिक ढांचे का रूप इस प्रकार था। चूंकि प्रधानमंत्री कैबिनेट के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है उनका सचिव सचिवालीय गतिविधियों का समन्वयक हो गया। इससे मंत्रिमंडल सचिवालय की महत्ता में कमी आई और वह मात्र कैबिनेट के कागज पत्रों को निष्पादित करने वाली एक संस्था बन गयी। इस कारण झा को सुपर सचिव की संज्ञा दी जाने लगी प्रधानमंत्री के अधिकारियों और विदेशी प्रतिनिधियों के समस्त बैठकों में झा उपस्थित रहते थे प्रधानमंत्री की महत्वपूर्ण विदेश यात्राओं मेंझा उनके साथ रहते थे।

1966 पर शास्त्री जी के स्थान पर इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री नियुक्त हैं तो देश के आर्थिक और राजनीतिक वातावरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे अर्थव्यवस्था संकट पूरी स्थिति में थी और देश में योजना अवकाश घोषित कर दिया गया था।केंद्रीय सरकार के सत्ता में ह्रास हो गया था इस प्रकार सत्ता में आने के बाद प्रधानमंत्री के रूप में इंदिरा गांधी को दो प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। प्रथम मंत्रिमंडल में अपना वर्चस्व स्थापित करना था और दूसरा एक सुसंगत नीतियों के माध्यम से एक विश्वसनीय राजनीतिक माहौल उत्पन्न करना था अतः अपने प्रारंभिक वर्षों में उन्होंने पुरानी टीम से काम चलाया और श्री एल.के.झा इंदिरा गांधी के भी सचिव बने रहे। धीरे–धीरे इंदिरा गांधी ने प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य और अधिकारियों का विस्तार किया फलस्वरूप उन्होंने एक परिवर्तन किया। तथाकथित सिंडिकेट के विरुद्ध संग्राम और 1969 में कांग्रेस के विभाजन के बाद प्रधानमंत्री कार्यालय का कायाकल्प हो गया।इस संबंध में प्रोफेसर माहेश्वरी ने लिखा है कि इंदिरा गांधी का लोक प्रशासन के क्षेत्र में एकमात्र योगदान यह है कि उन्होंने सरकार की संपूर्ण मशीनरी को गैर निर्णय निर्माण संस्था बना दिया संपूर्ण शक्ति अपने हाथों में केंद्रित कर ली तथा अपने सचिवालय को भारत सरकार बना दिया। 1969 रुपए के अवमूल्यन के पश्चात उन्होंने एल.के.झा के स्थान पर पी0एन0हक्सन को अपने कार्यालय का सचिव बनाया।एक वर्ष बाद हक्सन को प्रमुख सचिव का दर्जा दिया गया। यह हक्सन ही थे जिन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय को वह अद्वितीय भूमिका और प्रतिष्ठा प्रदान की जो संपूर्ण सरकार में आतंक और डर का संचार करती थी। हक्सन एक शक्तिशाली नौकरशाह के रूप में उभरे और वास्तव में वे ही मुख्य प्रशासक थे। श्रीमती इंदिरा गांधी के कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय में अपार वृद्धि हुई और आपातकाल के दिनों में तो वास्तविक निर्णय वाले एक निकाय के रूप में उभरा जिससे लोग भारत सरकार का पर्यायवाची कहने लगे। इस समय कैबिनेट सचिवालय की भूमिका महत्वहीन हो गई थी। 1968 में खुफिया ब्यूरो से शोध एवं विश्लेषण शाखा RAW को अलग करके इस शाखा को अत्यंत व्यापक

बनाया गया और व्यक्तियों तथा प्रकरणों के संबंध में प्रधानमंत्री को पूर्ण जानकारी देने के लिए सक्रिय किया गया।शोध एवं विश्लेषण शाखा के प्रमुख प्रधानमंत्री के प्रति उत्तरदायित्व थे।वस्तुत श्री हक्सन की अध्यक्षता में प्रधानमंत्री कार्यालय ने स्वतंत्र कार्यपालिका शक्ति का रूप धारण कर लिया। किसी खुफिया रिपोर्ट से लेकर के प्रमुख पद पर किसी उपसचिव की नियुक्ति तक प्रत्येक बात को इस कार्यालय से गुजरना पड़ता था।घरेलू एवं विदेशी नीतियों का निर्धारण भी इसी कार्यालय में होता था संपूर्ण सत्ता कार्यालय में केंद्रित हो गई थी और कुछ मंत्रालयों की स्थिति पोस्ट ऑफिस जैसी होकर रह गई थी।1974 में हक्सन के स्थान पर श्री पी एन धर प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव बने। इस समय तक प्रधानमंत्री कार्यालय एक वास्तविक सरकार के रूप में स्थापित हो चुका था। यह कार्यालय भारत सरकार के महासचिवालय के रूप में अभ्युदित हुआ।

1977 में भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जनता पार्टी की सरकार केंद्र में सत्तारूढ़ हुई और मोरारजी देसाई के प्रारंभिक कार्यों में इस महाशक्तिशाली संस्था प्रधानमंत्री कार्यालय की शक्तियों पर अंकुश लगाना था। अतः उन्होंने इस कार्यालय के कर्मचारियों की संख्या कम कर दी और इसका नाम बदलकर प्रधानमंत्री कार्यालय कर दिया। देसाई ने अवकाश प्राप्त भारतीय नागरिक सेवा के अधिकारी श्री वी0 शंकर को सचिव बनाकर उन्हें प्रमुख सचिव का दर्जा प्रदान किया। रॉ (RAW) संगठन को प्रधानमंत्री कार्यालय से अलग कर दिया। कैबिनेट सचिवालय का कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग को पहले के समान गृह मंत्रालय को और राजस्व जांच विभाग वित्त मंत्रालय को लौटा दिया गया। कैबिनेट सचिव निर्मल मुखर्जी अधिकतर मुद्दों पर प्रधानमंत्री से सीधे संपर्क रखते थे। उन्हें इसके लिए प्रधानमंत्री के सचिव की जरूरत नहीं पड़ती थी। इस प्रकार कैबिनेट सचिव की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया गया। इस प्रकार अभूतपूर्व शक्ति संपन्न प्रधानमंत्री सचिवालय को प्रधानमंत्री कार्यालय में बदलकर उसकी शक्तियों में काफी कमी कर दी गई। परन्तु वी0 शंकर के आदेश समस्त सरकारी स्थलों में व्याप्त रहते थे और उनके शब्द स्वयं मुख्य कार्यपालिका के आदेश माने जाते थे।

जनता पार्टी का कार्यकाल संक्षिप्त था और इंदिरा गांधी 1980 में पुनः सत्ता में आयी और 30 अक्टूबर 1984 तक प्रधानमंत्री बनी रहीं। इंदिरा गांधी ने पुनः एक शक्तिशाली प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रदर्शित किया। इस समय तक संजय गांधी का भी भारतीय राजनीति में महत्व और भूमिका काफी बढ़ चुका थी। वे एक बार फिर सत्ता के केंद्र बने और पीसी एलेग्जेंडर को इंदिरा गांधी ने अपना प्रमुख सचिव बनाया उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय के नाम को छोड़कर सब कुछ बदल दिया। गृह मंत्रालय के अधिकार फिर कम कर दिए गए और प्रधानमंत्री कार्यालय के अधिकार फिर से वापस मिल गए एलेग्जेंडर के साथ उनकी टीम के अन्य सदस्य जी पार्थसारथी,गोपी अरोड़ा,वीएस त्रिपाठी, आरके धवन और शारदा प्रसाद थे। प्रधानमंत्री कार्यालय पुनः सरकार में नीति और निर्णय निर्माण की अत्यंत शक्तिशाली संस्था बन गया।

अक्टूबर 1984 में इंदिरा गांधी की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र राजीव गांधी नवंबर 1984 में प्रधानमंत्री बने। गांधी के 5 वर्ष के कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय का गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों दृष्टि से विस्तार हुआ और वह अपनी खोई हुई शक्ति एवं प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने में सफल हुआ। सचिवालय में अरुण सिंह,फर्नांडिस और अहमद पटेल की नियुक्तियां की गई राजीव गांधी के नेतृत्व में भी प्रधानमंत्री सचिवालय का अधिक सक्रिय एवं शक्तिशाली स्वरुप देखने को मिलता है उनके सचिव गोपी अरोड़ा के बारे में कहा जाता है कि उनके अधिकारों का दायरा इतना विस्तृत था कि प्रधानमंत्री कार्यालय में होने वाली कुछ ही बैठकर ऐसी होंगी जिस में उपस्थित नहीं रहे हैं प्रधानमंत्री प्रायः सभी मामलों पर उनकी राय लेते थे यहां तक कि सरकारी सचिवों की नियुक्तियों में भी उनकी दखल अंदाजी होती थी।

राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री कार्यालय में न केवल परिवर्तन किए बल्कि उससे अधिक प्रभावशाली और सक्रिय बनाया राजीव गांधी एक सक्रिय प्रधानमंत्री थे जो भारत को शीघ्र 21वीं सदी में ले जाना चाहते थे वह राजनीतिज्ञों और कैबिनेट सहयोगियों की अपेक्षा अपने छोटे समूह सलाहकारों के बीच अधिक अपनापन और आत्मविश्वास महसूस करते थे उनके सलाहकारों में कुछ अधिकारी तकनीकी तंत्री और उच्च कोटि के प्रबंधक थे। मात्रात्मक दृष्टि से राजीव गांधी के कार्यकाल में कार्यालय का आकार बढ़ा। एक समय तो इस कार्यालय में तीन पूर्व सचिव, तीन अतिरिक्त सचिव, 5 संयुक्त सचिव और बड़ी संख्या में विशेष कार्य अधिकारी तथा निदेशक स्तर के अधिकारी कार्यरत थे। इनके अतिरिक्त बड़ी संख्या में सलाहकार थे। प्रधानमंत्री कार्यालय छत के नीचे नौकरशाही सितारों का जमघट था। श्रीमती सरला ग्रेवाल के बाद बी0जी0 देशमुख सचिव के पद पर नियुक्त हुए।बीपी सिंह के संक्षिप्त 9 माह के

कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा सका और ना ही सक्रिय रहा ।1991 में पीवी नरसिम्हा राव भारत के प्रधानमंत्री बने। भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी ए0 एन0 वर्मा पीएमओ के सचिव बनाए गए और बाद में वेणु गोपाल इस कार्यालय के सचिव बने। प्रधानमंत्री सचिवालय का महत्व अलग–अलग प्रधानमंत्री के शासन काल में अलग–अलग रहा है। पीवी नरसिम्हा राव ने यद्यपि राजनीतिक सचिव की नियुक्ति की है किंतु उन्होंने कोई संविधानेत्तर कार्य नहीं किया। इनके शासनकाल में भी प्रधानमंत्री सचिवालय समस्त शक्तियों का स्रोत नहीं रहा, जैसे कि इंदिरा गांधी और राजीव गांधी के कार्यकाल में था।

वास्तव में पिछले दो दशकों में नरसिम्हा राव का पीएमओ सबसे कम घातक साबित हुआ लेकिन 2 वर्ष के कार्यकाल के बाद परिस्थिति बदल गई और पीएमओ पुनः एक मजबूत सत्ता का केंद्र बन गया गृहमंत्री चौहान की कश्मीर मामले से छुट्टी कर दी गई।श्री अमरनाथ वर्मा के अधीन पीएमओ की गृह मंत्रालय में तूती बज रही है और मंत्री महज एक मूकदर्शक बनकर रह गया। पीएमओ सचिव के रूप में वर्मा धीरे–धीरे शक्तिशाली होते गए अनुमान यह है कि वे प्रधानमंत्री के बहुत निकट तथा प्रभावशाली थे प्रत्येक फाइल उनके माध्यम से ही निपटाई जाती थी। पीवी नरसिम्हा राव के कार्यकाल में पीएमओ फिर एक बार शक्तिशाली हो गया।

प्रधानमंत्री देवगौड़ा की संयुक्त मोर्चे की सरकार के कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय भले ही सशक्त ना रहा हो परंतु उसका कामकाज उसी प्रकार था जैसा कि उनके पूर्व अधिकारियों के समय था। इसी प्रकार प्रधानमंत्री गुजराल जो कि एक कमजोर प्रधानमंत्री सिद्ध हुए थे।उनके कार्यकाल में एनएन वोहरा की निगरानी और पंजाब कैडर के विश्वस्त आईएएस अधिकारियों के अलावा आईएफ एसअधिकारियों को जमा करके अपने पीएमओ की अफसरशाही छवि को पुख्ता किया। प्रभु चावला के अनुसार गुजराल की टीम को निकम्मेपन के लिए याद रखा जाएगा उन्होंने राजनीतिक नक्लवाद की अभिजात व्यवस्था लागू की थी।देवगौड़ा और गुजराल के कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय को सक्रिय एवं सशक्त होने का अवसर ही नहीं मिला।

प्रधानमंत्री कार्यालय प्रधानमंत्री को उसके राजनीतिक संसदीय प्रशासनिक एवं सार्वजनिक दायित्व के वहन में सहायता प्रदान करता है। बहुमत दल वाली सरकारों के समय कार्यरत प्रधानमंत्री कार्यालय का सशक्त एवं सक्रिय होना आश्चर्यजनक बात नहीं है। परंतु मिली जुली सरकार में ऐसा कदाचित ही देखने को मिलता है मिली जुली सरकार में एक नवीन समीकरण आवश्यक हो जाता है भारत में मिली सरकारों को चलाने का अनुभव अधिक नहीं रहा है।भारत में सर्वप्रथम मोरारजी देसाई के अधीन मिली जुली सरकार (1977–79) वीपी सिंह के अधीन जनता दल की सरकार (1989–90) एच0 डी0 देवगौड़ा के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे की सरकार (1996–97) इंद्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में बनी संयुक्त मोर्चा सरकार मात्र 8 माह कार्य कर सकी। मिली मिली सरकारों में अटल बिहारी वाजपेई के नेतृत्व में राजग सरकार अपने 5 वर्ष के कार्यकाल को पूरा कर पाई और इस सरकार ने राजनीतिक स्थिरता भी प्रदान की।साथ ही पीएमओ लघु भारत सरकार के रूप में उभर सका।इस संबंध में यह कहना गलत नहीं होगा कि प्रधानमंत्री कार्यालय भारत सरकार की सरकार है। प्रधानमंत्री के अधिक समीप होने के कारण या मंत्रिमंडल सचिवालय से अधिक शक्तिशाली रहता है। वास्तव में यह कार्यालय राजनीति प्रधान की कीर्ति में खिलता है जैसा कि बाजपेई जी और उनसे पूर्व के अन्य प्रधानमंत्रियों के कार्यकाल में देखने को मिला।

भारत सरकार के क्रियान्वयन में या देखने को मिलता है कि जब कभी नवीन प्रधानमंत्री सत्तारूढ़ होता है तब यह उत्सुकता तथा व्याकुलता से देखा जाता है कि प्रधानमंत्री कार्यालय कैसे विकसित होगा और उसका स्वरूप क्या होगा यह राजग सरकार के संबंध में अधिक सत्य प्रतीत होता है। पिछले अनेक वर्षों से प्रधानमंत्री कार्यालय एक उच्च संस्था के रूप में विकसित हुआ है। अनेक अवसरों पर इस कार्यालय ने प्रधानमंत्री सचिवालय के क्षेत्राधिकार पर अनाधिकार कब्जा किया है तथा मंत्रालयों और विभागों की गतिविधियों में हस्तक्षेप किया है। यह कार्यालय केवल प्रधानमंत्री की शक्ति और सत्ता का प्रतीक है अपितु कार्यालय में कार्य करने वाले व्यक्ति जो प्रधानमंत्री के नाम से सत्ता और शक्ति प्राप्त करते हैं उनका भी प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय ने अपेक्षित से अधिक सत्ता और शक्ति अर्जित कर ली है।

प्रधानमंत्री कार्यालय सत्ता का केंद्र है। प्रधानमंत्री कार्यालय आज भी मंत्रालयों के आधिपत्य के रूप में काम कर रहा है वर्षों से चली आ रही कार्यप्रणाली के आधार पर मंत्रियों ने पीएमओ को अपने से बड़ा शक्ति केंद्र स्वीकार करके एक प्रकार का समझौता कर लिया है प्रधानमंत्री के अधिक निकट होने के कारण यह मंत्रिमंडल सचिवालय से अधिक शक्तिशाली है।

8.3 मंत्रिमंडलीय सचिवालय

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः– मंत्रिमंडल सचिवालय की जड़े स्वतंत्रता के पूर्व से देखने को मिलती है। किन्तु भारत सरकार का कैबिनेट सचिवालय मुख्यतः स्वतंत्रता के उपरांत की घटना है। भारत में इस का प्रारंभ उस समय से होता है जब भारत सरकार द्वारा गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में विभागीय व्यवस्था की नींव रखी गई। यह व्यवस्था पहले से चली आ रही थी किंतु इसे कानूनी रूप लॉर्ड कैनिंग के शासनकाल में दिया गया।प्रारंभ मैं गवर्नर जनरल की परिषद ही परामर्शदाता मंडल का कार्य करती थी किंतु जैसे–जैसे कार्य का भार और कार्य की जटिलता बढ़ती गई वैसे–वैसे विभिन्न विभागों का कार्य परिषद के सदस्यों को सौंपा जाने लगा केवल महत्वपूर्ण विषय गवर्नर जनरल या परिषद द्वारा संयुक्त रूप से संपादित किए जाते थे।

कार्यकारिणी परिषद के सचिवालय का अध्यक्ष गवर्नर जनरल का निजी सचिव होता था किंतु वह परिषद की बैठकों में उपस्थित नहीं होता था। लार्ड विलिंगडन में परिषद की बैठकों में अपने निजी सचिव को सम्मिलित करने की परंपरा डाली जो बाद के वर्षों में चालू रहे। नवंबर 1935 में उसे कार्यकारिणी परिषद के सचिव का अतिरिक्त दर्जा प्रदान किया गया आगे चलकर गवर्नर जनरल के सचिव के साथ–साथ कार्यकारिणी परिषद के कार्यों का विभाजन करके उन्हें दो अलग–अलग व्यक्तियों को सौंप दिया गया। भारत मे मंत्रिमंडल सचिवालय अक्टूबर 1945 में आरंभ हुआ था ।इसका प्रारंभ वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के युद्ध संसाधन एवं पुनर्निर्माण की समन्वय समिति की सेवा के लिए एक छोटे सचिवालय के निर्माण में देखा जा सकता है। लॉर्ड वेवल ने भारत सचिव लॉर्ड पैथिक लोरेंस को 22 अक्टूबर 1945 में एक पत्र लिखा था जिसमें कहा गया था कि सर इरिक कोट्स एक छोटा सचिवालय स्थापित कर रहे हैं। मुझे आशा है कि बाद में एक वास्तविक परिषद सचिवालय के रूप में विकसित होगा जिसमें कार्यकारी परिषद और इसकी समितियों और भारतीय रक्षा समिति की भी सेवा करने की क्षमता होगी। सर इरिक कोट्स अपने वर्तमान दायित्व के साथ साथ कार्यकारी परिषद के सचिवालय का भी कार्यभार देखेंगे और तब यह सचिवालय वास्तव में सही मंत्रिमंडल सचिवालय बनेगा।

आगे चलकर यही सचिवालय सितंबर 1960 में अंतरिम सरकार के आदेश द्वारा इस सचिवालय का नाम बदलकर मंत्रिमंडलीय सचिवालय कर दिया गया। 15 अगस्त 1947 को यही कार्यकारी परिषद का सचिवालय औपचारिक रूप से मंत्रिमंडल सचिवालय बन गया इसी समय प्रधानमंत्री नेहरू प्रधानमंत्री सचिवालय को मंत्रिमंडल सचिवालय से अधिक शक्तिशाली बनाना चाहते थे किंतु सरदार पटेल, वीपी मेनन तथा अन्य वरिष्ठ सहयोगियों के विरोध और लॉर्ड माउंटबेटन की सलाह पर नेहरू ने उच्च शक्ति संपन्न प्रधानमंत्री सचिवालय का विचार त्याग दिया और अपने पूर्ण कार्यकाल में उन्होंने मंत्रिमंडल सचिवालय तथा विभागीय मंत्रियों के माध्यम से ही कार्य किया। इसके पश्चात उन्होंने एक शक्तिशाली प्रधानमंत्री कार्यालय पर विश्वास नहीं किया।

1947 में इसके कार्य के स्वरूप में महत्वपूर्ण वृद्धि तब हुई जब मंत्रिमंडलीय रक्षा समिति गठित हुई। इस रक्षा समिति को सचिवालयीय सहायता प्रदान करने के लिए मंत्रिमंडलीय सचिवालय में एक अलग सैनिक शाखा स्थापित की गई। 1949 में इस सचिवालय के कार्य क्षेत्र में और अधिक वृद्धि तब हुई जब मंत्रिमंडलीय आर्थिक समिति की स्थापना की गई। यह परिषद आर्थिक क्षेत्र से संबंधित महत्वपूर्ण मामलों पर शीघ्रता से उच्च स्तरीय विचार विमर्श करने के लिए निर्मित की गई थी। जून 1950 तक इस समिति कासचिवालय वित्त मंत्रालय से संबद्ध रहा किंतु प्रशासनिक सुविधा के कारण से मंत्रिमंडल सचिवालय में समाहित कर लिया गया तथा इस संस्था को आर्थिक कक्ष का नाम दिया गया तदुपरांत अनावश्यक दोहरे पन को रोकने के लिए आर्थिक कक्ष को अक्टूबर1955 में मुख्य सचिवालय में मिला दिया गया।1954 में प्रभाग की स्थापना की गई और उसे मंत्रिमंडल सचिवालय के अधीन कर दिया गया। मई 1964 में इसे मंत्रिमंडल सचिवालय से ग्रह मंत्रालय में मिला दिया गया वर्तमान में यह कार्मिक लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय के प्रशासनिक सुधार विभाग में स्थित है।

1957 में मंत्रिमंडल के अंतर्गत रक्षा समिति की स्थापना से इस सचिवालय के कार्यों में एक महत्वपूर्ण अंतर आया। मंत्रिमंडल सचिवालय में सामने सैन्य खंड के नाम से एक अलग खंड की स्थापना की गई इसका कार्य रक्षा समिति को सचिवालय सहायता प्रदान करना था। 1 जुलाई 1991 को सैन्य खण्ड को रक्षा मंत्रालय में सम्मिलित कर दिया गया 1961 में मंत्रिमंडल सचिवालय के एक भाग के रूप में सांख्यिकी विभाग की स्थापना की गई जिसे 1970 में योजना मंत्रालय में स्थानांतरित कर दिया गया। आगे चलकर 1991 से योजना मंत्रालय योजना और

कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय के नाम से जाना जाता है। जुलाई 1965 में मंत्रिमंडल सचिवालय के एक हिस्से में जांच खंड की स्थापना की गई इसका प्रमुख कारण संयुक्त जांच समिति को सचिवालयीय सहयोग प्रदान करना था।

कैबिनेट सचिवालय का संगठनः— मंत्रिमंडलीय सचिवालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है इसका सचिव कैबिनेट सचिव कहलाता है जो प्रशासनिक सेवा के शिखर पर विराजता है। इसकी सहायता के लिए अन्य अधिकारीगण तथा कर्मचारी होते हैं सचिवालय में तीन प्रमुख शाखाएं हैं.......

1. **मंत्रिमंडल सचिवालय शाखा प्रधान।**
2. **जांच शाखा।**
3. **सुरक्षा शाखा।**

1. **मंत्रिमंडल सचिवालय शाखा (प्रधान)ः**— इसमें मंत्रिमंडल सचिव ,तीन सचिव, एक अतिरिक्त सचिव, तीन संयुक्त सचिव, 8 निदेशक/उपसचिव,एक संयुक्त निदेशक और 6 अवर सचिव या समकक्ष अधिकारी होते हैं इसमें लगभग 23 अधिकारी कार्यरत है।
2. **जांच शाखाः**— यह शाखा कैबिनेट की संयुक्त जांच समिति के विषय से संबंधित कार्यों को संपन्न करती है। संयुक्त जांच समिति ने एक अध्यक्ष, 4 संयुक्त सचिव या उसके समकक्ष ,एक निदेशक (सेवा) ब्रिगेडियर या समकक्ष अधिकारी,3 लेफ्टिनेंट या समकक्ष अधिकारी ,एक संयुक्त निदेशक और उप सचिव होते हैं।
3. **सुरक्षा शाखाः**— यह शाखा का प्रमुख कारण प्रधानमंत्री सहित अति महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा की व्यवस्था एवं निगरानी करना है इसमें एक सचिव होता है साथ में इसके अधीन विशेष सुरक्षा दल रहता है।

कैबिनेट सचिवालय के कार्यः— मंत्रिमंडल तथा इसकी समितियों के समक्ष पत्र प्रस्तुत करना प्रस्तुत करने के पूर्व यह देखना कि वह व्यवस्थित है या नहीं और इनमें आवश्यक सूचना है या नहीं। कार्यवाही को लिपिबद्ध करना और लिए गए निर्णयों पर कार्यवाही करना ही मंत्रिमंडल सचिवालय के कार्य हैं विभिन्न विभागों के मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए सचिवों की समिति व्यवस्था अस्तित्व में है।यह समितियां समय—समय पर उत्पन्न होने वाली विशिष्ट एवं अत्यंत अनिवार्य समस्याओं पर सलाह देती है कैबिनेट सचिवालय केंद्रीय प्रशासन का केंद्र बिंदु है इसके कार्यों का विवरण निम्नलिखित के अंतर्गत किया जा सकता है।.

1. **कैबिनेट सचिवालय के रूप मेंः**— केंद्रीय मंत्रिमंडल और उसकी समितियों को दैनिक कार्य से संबंधित सचिवालयीय सहायता प्रदान करता है यह सचिवालय कैबिनेट की बैठकों के लिए कार्य सूची तैयार करता है इसके बाद विवादों तथा निर्णयों का अभिलेख रखता है तथा इसके सम्मुख आने वाले विषयों पर ज्ञापन तैयार करता है। सचिवालय सूचना केंद्र के रूप में विभिन्न सरकारी संस्थाओं से संबंधित आवश्यक सूचनाएं केंद्रीय मंत्रिमंडल उसकी समितियों तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति को प्रेषित करता है।कैबिनेट सचिव मंत्रिमंडल की बैठकों के निर्णयों की सूचना भी संबंधित विभागों को पहुंचाता है। प्रमुख विषयों पर लिए गए निर्णयों का मासिक प्रतिवेदन तैयार करके यह विभिन्न संबंधित संस्थाओं को प्रेषित करता है इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री अभिलेखों को अपने अनुसार तैयार कराकर मंत्रियों एवं अधिकारियों के पास भेजने का कार्य करता है इस प्रकार यह सचिवालय संबंधित कार्यों को संपन्न करता है।
2. **प्रारम्भकर्ता विभाग के रूप मेः**— इस रूप में कैबिनेट सचिवालय तीन प्रकार के प्रारंभिक कार्य करता है। **प्रथम** मंत्रिपरिषद में मंत्रियों, राज्यमंत्री,उपमंत्रियों तथा संसदीय सचिवों की नियुक्तियां उनके विभागों के वितरण, शपथ ग्रहण समारोह, पद ग्रहण, त्यागपत्र आदि मामलों से संबंधित समस्त कार्य इसके अधीन आते हैं। **द्वितीय** संविधान के अनुच्छेद 77(3) के प्रावधानों के अंतर्गत ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो सरकार के कार्यों को सुविधापूर्वक संपन्न करने में सहायता करते हो। यह कैबिनेट कार्यालय में होता है। **तीसरा** सरकार की नीतियों को लागू करने तथा उनमें समन्वय लाने से संबंधित विभागों की देखरेख रखना इसका महत्वपूर्ण प्रारंभिक कार्य है। इस कार्य को करने में अन्य मंत्रालयों तथा विभागों के अधिकारी को न तो यह कम करता है, और न ही छिनता है अपितु विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करता है, उन्हें उचित परामर्श देता है तथा सरकारी नीतियों को सुचारु रुप से लागू करता है।

3. **समन्वयकर्ता विभाग के रूप में**:— किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था में सरकारी नीतियों को कुशलतापूर्वक लागू करने के लिए विभागों के बीच समन्वय का होना अत्यंत आवश्यक है इसके लिए अनेक तरीकों को अपनाया गया है कैबिनेट विषयों से संबंधित विभाग एक ऐसा ही अभिकरण है जो प्रभावशाली समन्वय के लिए कार्यरत है। भारत सरकार में अनेक प्रकार की इकाइयां कार्य करती है जैसे—मंत्रालय, विभाग, निगम, बोर्ड, कंपनियां, नई—नई समितियां आदि।इस समय स्थिति यह है कि शायद ही कोई व्यक्ति इन विभिन्न इकाइयों की पूर्ण सूची तैयार कर सकें। नित्य नवीन संगठन स्थापित हो रहे हैं इन विभिन्न इकाइयों में समन्वय स्थापित करना कठिन कार्य है कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कार्य विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करना है केंद्रीय प्रशासनिक स्तर पर यह सचिवालय एक प्रमुख समन्वयक संस्था है। कैबिनेट सचिव विभिन्न समितियों का अध्यक्ष होने के नाते विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सचिवालय केंद्र और विभिन्न राज्यों के बीच भी समन्व्यात्मक कार्य करता है।

4. **मंत्रिमंडल के निर्णय को क्रियान्वित करने के रूप में**:— यह सचिवालय मुख्यतः कैबिनेट सचिव के माध्यम से प्रधानमंत्री तथा आवश्यक होने पर मंत्रियों को समय—समय पर महत्वपूर्ण विषयों से संबंधित नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन के विषय में परामर्श देता है। इसे मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुत सभी विषयों के संबंध में मंत्रिमंडल की सहायता और आवश्यक कार्रवाई करनी पड़ती है। जैसे संसद में व्यवस्थापन के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्ताव तैयार करना, विदेशों के साथ सन्धियों एवं समझौतों आदि से संबंधित मामले ,संसद के अधिवेशन को प्रारंभ करने, स्थगित करने और लोकसभा को भंग करने संबंधी प्रस्ताव पर विचार करना, सार्वजनिक जांच समितियों की नियुक्ति और ऐसी समितियों की रिपोर्ट पर विचार, मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए किसी भी पूर्व निर्णय पर पुनर्विचार आदि।

कैबिनेट सचिवालय का एक महत्वपूर्ण कार्य देखना भी है कि मंत्रिमंडल या उसकी समितियों द्वारा लिए गए निर्णय लागू हो रहे हैं अथवा नहीं। इस कार्य हेतु यह सचिवालय मासिक प्रतिवेदन तैयार करता है जिसमें प्रत्येक मंत्रालय के कार्य की समीक्षा रहती है कि किस सीमा तक निर्णयों पर अमल हुआ है यदि यह पाया जाता है कि कैबिनेट के निर्णय को अमल में लाने के लिए कोई मंत्रालय प्रगति नहीं कर रहा है तो यह विषय उच्चतर स्तर पर तय किया जाता है ताकि निर्णय को लागू करने में तेजी लाई जा सके।

इस प्रकार मंत्रिमंडल सचिवालय अनेक महत्वपूर्ण कार्यों को संपन्न करता है। यह उच्चतर स्तर पर निर्णय लिए जाने की प्रक्रिया में समन्वय करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और प्रधानमंत्री के निर्देश के अनुसार कार्य करता है यह सचिवों की समितियों के कार्य भी करता है समय—समय पर इसकी बैठके मंत्रिमंडलीय सचिव की अध्यक्षता में उन समस्याओं पर विचार करने और परामर्श देने के लिए होते हैं जिन पर मंत्रालयों के बीच परस्पर परामर्श और समन्वय की आवश्यकता होती है।

कार्य प्रक्रिया:— कैबिनेट तथा उसकी समितियों के कार्यों का संचालन उन नियमों के अंतर्गतजिन्हें कैबिनेट में 1947 में निर्मित किया था।कैबिनेट अपने मामलों को 3 तरीके से संपन्न करती है **प्रथम** कैबिनेट में विचार—विमर्श द्वारा दूसरे पत्रों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सदस्यों के पास प्रपत्र भेजकर और तीसरे कैबिनेट की समिति में बातचीत द्वारा जिसमें 2 से अधिक मंत्री प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत किए जाते हैं।बैठकों में सम्मिलित होने के लिए किसी कैबिनेट मंत्री को निमंत्रण नहीं भेजा जाता है बल्कि नोटिस द्वारा सूचित किया जाता है। राज्य मंत्री जो स्वतंत्र विभाग के प्रभारी होते हैं तथा उनके विभाग से संबंधित बातों पर जब कैबिनेट में विचार होता है तब उन्हें निमंत्रण देकर बुलाया जाता है। इन बैठकों की व्यवस्था कैबिनेट सचिव तथा उसके सचिवालय के अधिकारियों द्वारा की जाती है। मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी बैठकों के समय उपस्थित रहते हैं या आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बैठकों में बुलाया जाता है। बैठकों का विवरण कैबिनेट सचिव द्वारा तैयार किया जाता है जिसे किसी बैठक के 24 घंटों के अंदर प्रधानमंत्री के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। प्रधानमंत्री की अनुमति मिलने पर यह विवरण कैबिनेट मंत्रियों राज्य मंत्रियों जो विभागों के स्वतन्त्र प्रभारी हो होते हैं तथा संबंधित सचिवों के पास भेज दिए जाते हैं यदि इस विवरण में इस बैठक में उपस्थित किसी मंत्री द्वारा संशोधन कराया जाता है तो उसे प्रधानमंत्री के विचारार्थ भेज दिया जाता है। यदि प्रधानमंत्री स्वीकृति दे देते हैं तो संशोधित विवरण पुनः सदस्यों के पास भेज दिया जाता है प्रत्येक कैबिनेट की बैठक के बाद कैबिनेट सचिव प्रेस को मुख्य निर्णयों की जानकारी देता है।

कैबिनेट सचिव:— कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कैबिनेट सचिव होता है जो प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहता

है। कैबिनेट सचिवालय की अध्यक्षता कैबिनेट सचिव द्वारा की जाती है वह इस सचिवालय का प्रशासनिक प्रमुख होता है कैबिनेट सचिव केंद्रीय संस्थापन मंडल का पदेन अध्यक्ष भी होता है वह भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठतम सदस्य होता है। मंत्रिमंडल सचिव होने के नाते वह कानून व मंत्रिमंडल की बैठकों में भाग लेता है इसी प्रकार वह मंत्रिमंडल समितियों की बैठकों में भी भाग लेता है।मधुलिमये के अनुसार इन बैठकों में कोई औपचारिक मतदान नहीं होता आजकल इन बैठकों के निर्णय को ही अभिलेखित किया जाता है लेकिन बैठकों की कार्यवाही को प्रधानमंत्री की अनुमति अवश्य मिलनी चाहिए यह पद आज अत्यधिक महत्वपूर्ण हो चुका है और निसंदेह लोक सेवक की यह अंतिम नियुक्ति नहीं है। इस पद पर आसीन पदाधिकारियों को राज्यपाल भी बनाया जाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार योग्यतम एवं वरिष्ठतम अधिकारियों को ही कैबिनेट सचिव बनाया जाना चाहिए।यह सचिवों के सम्मेलन की अध्यक्षता भी करता है। भारत में इस पद का प्रारंभ 1950 में हुआ और एन0आर0 पिल्लई प्रथम कैबिनेट सचिव बने। एन0 के0 मुखर्जी के कार्यकाल तक आईसीएस का सदस्य ही कैबिनेट सचिव होता था उनके अवकाश के बाद अब आई0 ए0 एस0 वर्ग के सदस्य कैबिनेट सचिव के पद पर पदासीन होते हैं।

1949 में आयंगर ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि कैबिनेट सचिव प्रशासनिक अधिकारियों में सबसे उच्च श्रेणी का व्यक्ति होता है जो अपने गुणों, शक्ति पहल करने की क्षमता तथा प्रभावशीलता के कारण इस पद पर नियुक्त किया जाता है। वह कैबिनेट सचिवालय में समन्वयात्मक कार्यों को देख सकता है विशेषतः उन कार्यों को जिनमें मंत्रिमंडल और प्रधानमंत्री रुचि रखते हैं।भारतीय प्रशासन का यह सर्वाधिक शक्ति संपन्न एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है। इस पृष्ठभूमि में भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुशंसा की थी कि इस पद को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि इसकी अवधि 3 या 4 वर्ष की रहे। किंतु प्रशासनिक आयोग में इस सिफारिश को ना मानते हुए अनुशंसा की कि कैबिनेट सचिव को अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा में वेतन के अधिकतम वेतनमान का अधिकतम वेतन दिया जाए जो ₹30,000 है इसके अतिरिक्तउसे अधिक मनोरंजन भत्ता मिलता है।

कैबिनेट सचिव की भूमिकाः— आयंगर प्रतिवेदन 1949 के अनुसार कैबिनेट सचिव को वरिष्ठता के आधार पर सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए। उसे केंद्रीय सरकार के समस्त विभागों में समन्वय स्थापित करना चाहिए जो अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। इस आयोग की राय में उसे ऐसी परंपरा स्थापित करना चाहिए जिसमें कैबिनेट सचिव ही उस समिति का पदेन अध्यक्ष हो जिसे प्रशासनिक नियुक्तियां करनी होती है।आयंगर की संस्कृतियां स्वीकार करने के फलस्वरूप 1950 से मंत्रिमंडल सचिव को सबसे वरिष्ठ लोक सेवक माना जाने लगा जिसकी शक्ति प्रशासनिक सुधार आयोग 1966—70 की संस्कृतियों पर 3 वर्ष के लिए की गई। यह 3 वर्ष का कार्यकाल इसलिए संस्तुत किया गया कि वह पदाधिकारी लोक सेवाओं को एक प्रभावी नेतृत्व प्रदान कर सकें ।

1950 से लेकर 1980 तक अधिकांश समय तक कांग्रेस दल ही सत्तारूढ़ रहा। 1977 में जनता पार्टी सत्ता में आई और मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने। 1980 में पुनः सरकार बदली। सरकार परिवर्तन के कारण मंत्रिमंडल सचिव को न बदलने की पुरानी परंपरा को बनाए रखा गया।1980 में जब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनी तब उन्होंने 1981 में मंत्रिमंडल सचिव के सेवानिवृत्ति के बाद मंत्रिमंडल सचिव की नियुक्त करने में तीन वरिष्ठ लोक सेवकों की उपेक्षा कर दी। इस प्रकार मंत्रिमंडल सचिव की दिशा में एक नवीन परम्परा आरंभ हुई। 1986 में प्रथम बार राजीव गांधी के प्रधानमंत्री के कार्यकाल में मंत्रिमंडल सचिव का स्थानांतरण कर दिया गया।जबकि सेवानिवृत्त होने में 1 वर्ष की शेष रह गया था।आज यह पद राजनीतिकृत हो गया है और अधिकारच्युत करने की परंपरा आम हो चुकी है।

देशमुख टीम (1968) इस पद के क्रियान्वयन के तरीके से संतुष्ट नहीं थी और उसने इस पद की गरिमा तथा भूमिका में सुधार के लिए निम्नलिखित सिफारिश की थी।

1. कैबिनेट सचिव की स्थिति को भारत सरकार के संचालन के नियमों के तहत मान्यता मिलनी चाहिए।
2. यदि दो या अधिक मंत्रालयों के बीच मतभेद हो तो ऐसे मामलों को कैबिनेट सचिव के पास भेजना चाहिए जिससे वह इन मतभेदों को दूर कर सके।
3. यदि यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कतिपय मामला किस मंत्रालय से संबंधित है तो इसका निराकरण कैबिनेट सचिव पर छोड़ देना चाहिए यदि आवश्यकता हो तो कैबिनेट सचिव प्रधानमंत्री से परामर्श कर सकता है।

4. कैबिनेट सचिव को समय–समय पर अन्य सचिवों से संपर्क स्थापित करते रहना चाहिए।
5. कैबिनेट सचिव को अन्य सचिवों की तुलना में अधिक वेतन मिलना चाहिए जिससे उसकी स्थिति उच्च बनी रहे।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी उसकी भूमिका के महत्व को स्वीकार करते हुए यह सिफारिश की थी कि महत्वपूर्ण नीति निर्धारक विषयों में उससे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए क्योंकि वह प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल तथा मंत्रिमंडल की समितियों का प्रमुख सलाहकार होता है। एस0 एस0 खेरा ने जो स्वयं इस पद पर कार्य कर चुके हैं अपनी पुस्तक केंद्रीय कार्यपालिका 1975 में कैबिनेट सचिव की भूमिका अच्छी तरह से व्यक्त की है उनके अनुसार कैबिनेट सचिव प्रधानमंत्री की आँख और कान है। वह प्रधानमंत्री को भारत सरकार की कार्य प्रक्रिया से अवगत कराता है और प्रधानमंत्री से संपर्क बनाए रखता है किंतु वह प्रधानमंत्री की ओर से चौकसी रखने का कार्य नहीं करता।इस पद का मुख्य कार्य एक सामान्य स्टाफ का है ना कि विभिन्न मंत्रालयों में सूत्र एजेंसी का कार्य करना। उसका कार्य सहायता देना है ना कि कार्य पर निगरानी रखना इसके अतिरिक्त कैबिनेट सचिव के दो अन्य कार्य है प्रथम कभी–कभी वह प्रधानमंत्री की बिना अनुमति के अपनी सत्ता की जिम्मेदारी पूरी करता है और दूसरे प्रधानमंत्री द्वारा बताए गए विशेष कार्यों को पूरा करता है।

8.4 सारांश

मंत्रिमंडल सचिव के प्रमुख कार्य इस प्रकार है। प्रधानमंत्री का मुख्य परामर्शदाता होता है। मंत्रिमंडल तथा मंत्रिमंडल समितियों का प्रमुख परामर्शदाता होता है। लोक सेवा का प्रमुख होता है। विभिन्न मंत्रालयों और विभागों की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करता है। विभिन्न प्रशासनिक मंत्रालय और प्रधानमंत्री कार्यालय के मध्य एक कड़ी के समान कार्य करता है।वह सबसे अधिक राजनीतिक व्यवस्था और लोक सेवा के बीच एक कड़ी है। कैबिनेट सचिव एक अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकारी है। वह सभी स्थाई सेवकों के लिएपरामर्शदाता का कार्य करता है । इस पद के दायित्वों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि वह पर्याप्त अनुभवशील वरिष्ठ अधिकारी हो जो उच्चतर प्रतिभा तथा व्यापक कल्पना से युक्त हो।

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. **भारतीय प्रशासनः**– अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
2. **भारतीय प्रशासनः**– प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, ओमेगा पब्लिकेशन दिल्ली।
3. **आधुनिक लोक प्रशासनः**– आर0के0 दूबे, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
4. **भारतीय प्रशासनः**– बी0 सुब्रह्मण्यम, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।

8.6 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. कैबिनेट सचिवालय का राजनीतिक प्रमुख कौन होता है?
   (a) मुख्यमंत्री (b) प्रधानमंत्री
   (c) सचिव (d) राज्यपाल
2. निम्न में से कौन मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय का अंग नहीं है।
   (a) असैन्य शाखा (b) सैन्य शाखा
   (c) प्रशासनिक शाखा (d) खुफिया शाखा
3. कैबिनेट सचिवालय का गठन किया गया।
   (a) 1947 (b) 1952
   (c) 1962 (d) 1990

लघुउत्तरीय प्रश्नः–

1. कैबिनेट सचिवालय की संरचना का वर्णन करे।
2. कैबिनेट सचिवालय के कार्य पर टिप्पणी करें।
3. कैबिनेट सचिव की नियुक्ति कैसे किया जाता है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः–

1. प्रधानमन्त्री कार्यालय की संरचना तथा उसके कार्यो की व्याख्या करें।
2. मुख्य सचिव की शक्तियों व कार्यों का वर्णन करें।

इकाई–9 अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवायें

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 संघ लोक सेवा आयोग

9.3 अखिल भारतीय सेवायें

9.4 सारांश

9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.6 बोध प्रश्न

9.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन से हम संघ लोक सेवा आयोग के गठन कार्यों एवं महत्व के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- हम अखिल भारतीय सेवाओं के ऐतिहासिक विकास महत्व और आवश्यकता के बारे में जानेंगे।
- अखिल भारतीय सेवाओं की भर्ती तथा प्रशिक्षण की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे।

9.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्र भारत को ब्रिटिश शासन से जो प्रशासकीय ढाँचा विरासत में प्राप्त हुआ, उसमें अखिल भारतीय सेवाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। स्वतन्त्र भारत के संविधान में संघात्मक शासन–प्रणाली को अपनाये जाने के बावजूद भी अखिल भारतीय सेवाओं को यथावत् रखना अपने आप में विचित्र विरोधाभास हैं। अधिकारी पूर्णतः केन्द्र अथवा राज्यों की सेवा में नहीं होते बल्कि दोनों में से किसी एक के अन्तर्गत भिन्न–भिन्न समयों पर कार्य करते हैं। इन सेवाओं की भर्ती समान योग्यताओं एवं वेतनमान तथा अखिल भारतीय स्तर पर होती है। इनकी एक सामन प्रतिष्ठा होती है, तथा अधिकार और पारिश्रमिक स्तर भी एक सामन होता है।

भारतीय संविधान–निर्माताओं द्वारा ऐसी अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना क्यों की गयी, जो ब्रिटिश शासनकाल में औपनिवेशिक प्रशासन को एक सुदृढ़ ढाँचा प्रदान करने के लिए की गयी थी। पर्याप्त वाद–विवाद के पश्चात् कुछ कारणों से अखिल भारतीय सेवाओं को यथावत् रखना आवश्यक माना गया। प्रथम राज्यों के संकीर्ण दृष्टिकोण की तुलना में इनका दृष्टिकोण अधिक विस्तृत होता है तथा ये देश में एकता और अखण्डता की स्थापना करती हैं। द्वितीय, इन सेवाओं के सदस्यों की भर्ती एक विस्तृत क्षेत्र से की जाती है ओर उन्हें अच्छा वेतन तथा प्रतिष्ठा प्राप्त होती हैं। संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि एक अखिल भारतीय सेवा होगी और केवल उस सेवा के ही सदस्य संघ भर में ऐसे महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किये जा सकेंगे।

सेवी वर्ग प्रशासन का जितना भी महत्व बताया जाये, कम है। प्रशासन की सफलता के लिए सेवीवर्ग प्रशासन आवश्यक है। सेवीवर्ग प्रशासन में लोक–सेवकों की भर्ती सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है। वास्तव में प्रशासन की सफलता, कार्य–संचालन और प्रबन्ध योग्य एवं कुशल लोक–सेवकों पर निर्भर करता है। दोषपूर्ण भर्ती की प्रणाली के कारण प्रशासन में स्थायी दुर्बलता आ जाती है, और इसके कारण प्रशासन वास्तव में सुस्त एवं अयोग्य व्यक्तियों को आश्रय स्थल बन जाता है। इससे अच्छी भर्ती प्रणाली का महत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है। यहाँ यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि भर्ती के क्षेत्र में लोक–प्रशासन निजी प्रशासन से बहुत भिन्न है। लोक–प्रशासन के क्षेत्र में भर्ती–नीति का देश की संवैधानिक आवश्यकताओं तथा राजनीतिक दृष्टिकोण के अनुकूल होना आवश्यक है।

लोक–सेवा की कुशलता के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। लोक–सेवक जिस कार्य के लिए भर्ती किये जाते हैं

उस कार्य को सम्पन्न करने हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक माना जाता हैं। प्रशिक्षण को केवल पेशा सम्बन्धी ज्ञान तथा कौशल की वृद्धि करने तक ही सीमित नहीं रखा जाना चाहिए। इसे तो अपने उद्देश्य को अधिक व्यापक करना चाहिए और साथ ही यह उद्देश्य एक विस्तृत पृष्ठभूमि पर भी आधारित होना चाहिए।

9.2 संघ लोक सेवा आयोग

भारत में कार्मिक वर्ग के प्रशासन के क्षेत्र में संघ लोक सेवा आयोग का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारत में लोक सेवा आयोग की लोकतंत्र का एक आधार माना जाता है। सेवा विषयों के सम्बन्ध में स्वतंत्र विचार रखने के कारण यह कार्यपालिका को राजनीति व प्रशासन तंत्र के मध्य आवश्यक संतुलन स्थापित करने में सहायता देता है। संघ लोक सेवा आयोग यद्यपि एक परामर्शदात्री संस्था है तथापि इसकी सिफारिशें प्रायः ठुकराई नहीं जाती।

लोक सेवा आयोग का संगठनः– अनुच्छेद–316(1) के तहत संघ तथा संयुक्त आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा व राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाती है। प्रत्येक लोक सेवा आयोग के यथासम्भव आधे सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्होंने भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कम से कम दस वर्ष तक कोई पद धारण किया है।

अनुच्छेद–**316(2)** के तहत आयोग के सदस्य की पदावधि पद ग्रहण करने की तारीख से 6 वर्ष या संघ लोक सेवा आयोग की दशा में 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक होगी और राज्य लोक सभा आयोग की दशा में या संयुक्त आयोग की दशा में 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक होगी। लेकिन किसी सदस्य की पदावधि निश्चित की गई अवधि से पहले ही समाप्त हो जाती है–(क) यदि संघ या संयुक्त आयोग की दशा में राष्ट्रपति को सम्बोधित लिखित त्यागपत्र द्वारा या राज्य आयोग की दशा में राज्यपाल को सम्बोधित लिखित त्यागपत्र द्वारा तथा (ख) उसे राष्ट्रपति द्वारा सिद्ध कदाचार या शारीरिक तथा मानसिक शैथिल्य या दिवालिया न्याय निर्णीत होने पर हटाया भी जा सकता है। अनुच्छेद–317(1), (2) के तहत राज्य लोक सेवा आयोग की दशा में भी राष्ट्रपति ही उच्चतम न्यायालय को निर्देश कर सकता है और उच्चतम न्यायालय के प्रतिवेदन के अनुसरण में सदस्य को हटाने का आदेश दे सकता है। सदस्यों को कदाचार का दोषी तब समझा जा सकता है जब :

1. वह भारत सरकार या राज्य सरकार की ओर से की गई किसी संविदा में सम्बद्ध या हितबद्ध है, या
2. यदि वह ऐसी संविदा या करार के किसी लाभ में या उससे उद्भूत किसी लाभ या उपलब्धियों में भाग लेता है।

सरकार के अधीन नियोजन में लोक सेवा आयोग के सदस्य पदावधि की समाप्ति पर नियुक्त नहीं किये जा सकते हैं। राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या संघ अथवा राज्य आयोग के अन्य सदस्य की लोक सेवा आयोग में उच्चतर पद पर नियुक्ति की जा सकती है किन्तु आयोग के बाहर नहीं। संविधान में कुछ ऐसे भी उपबन्ध दिये गये जिनसे लोक सेवा आयोग की सदस्यों की सेवा सुरक्षा तथा विशेषाधिकारों का बोध होता है तथा इन उपबंधों के द्वारा ही आयोग की बाहरी प्रभावों से मुक्त रखने का प्रयास किया गया हैं।

लोक सेवा आयोग के कार्य और शक्तियाँः– विभिन्न देशों में लोक सेवा आयोगों के कार्य भिन्न–भिन्न पाये जाते हैं, तथापि मोटे तौर पर इन्हें तीन भागों में विभक्त किया जा सकता हैं– 1. नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों का चयन तथा इससे सम्बन्धित कार्य, 2. पदोन्नति, अनुशासन सम्बन्धी मामले मामले तथा अपीलों की सुनवाई और 3. वेतन तथा मजदूरी का निर्धारण, पदों का वर्गीकरण।

भारत में लोक सेवा आयोग को मुख्यतः प्रथम वर्ग के कार्य सौंपे गये हैं तथा द्वितीय वर्ग के कार्य विभागों को परन्तु इस वर्ग के कार्यों के बारे में भी आयोग का परामर्श आवश्यक है। संविधा में कहा गया है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारें लोक सेवाओं तथा पदों के लिए की जाने वाली भर्ती की रीतियों से सम्बन्धित उन समस्त विषयों पर अपने–अपने लोक सेवा आयोग से परामर्श करेगी जो नियुक्तियों, पदोन्नति, अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही तथा कर्तव्य पालन के समय लोक सेवाओं द्वारा उठायी जाने वाली हानि की पूर्ति के दावों अथवा कर्तव्य–पालन के प्रसंग में चलने वाले मुकदमों में लोक सेवकों के वैधानिक बचाव पर होने वाले व्यय आदि के बारे में निहित सिद्धान्तों से सम्बन्धित हो। आयोगों का यह कर्तव्य है कि वे इन विषयों से सम्बन्धित अन्य मामलों में अपनी सरकारों को परामर्श दें।

भारतीय लोक सेवा आयोग को मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करना होता है–

1. लोक सेवा आयोग का सर्वप्रथम कार्य भर्ती के तरीकों तथा लोक अथवा असैनिक सेवाओं तथा असैनिक पदों पर सीधी अथवा पदोन्नति द्वारा नियुक्ति करने में अपनाये जाने वाले सिद्धान्तों से सम्बन्धित सभी मामलों में सरकार को परामर्श देना है।
2. दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य सेवाओं में नियुक्ति करने के लिए योग्यता–मापक परीक्षाओं का संचालन करना भी है। इसके लिए वह परीक्षा सम्बन्धी नियम, विनियम बनाता है, लिखित व साक्षात्कार परीक्षाओं की व्यवस्था करता हैं।
3. लोक सेवा के किसी व्यक्ति द्वारा अपने कर्तव्य के सन्दर्भ में किये गये कार्यों में उसके विरूद्ध की गयी कानूनी कार्यवाहियों में जो खर्चा, उसे अपनी प्रतिरक्षा में करना पड़ा है, उसके दावे के सम्बन्ध में तथा किसी लोक सेवक द्वारा निवृत्ति वेतन अथवा पेंशन के लिए किये जाने वाले उस दावे के सम्बन्ध में भी परामर्श देना इसका कार्य है।
4. अन्य कोई ऐसा मामला जो कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा विशेष रूप से उसको सौंपा जाये, उसका सम्पादन भी आयोग द्वारा होता है। आयोग इस बात की भी व्यवस्था करता है कि संसद द्वारा केवल सरकारी सेवाओं के सम्बन्ध में ही नहीं, अपितु उन सेवाओं के सम्बन्ध में भी जो कि स्थानीय अधिकारियों, नियमों अथवा सार्वजनिक संस्थाओं के अधीन हों, आयोग के कार्यों का विस्तार किया जा सकेगा।

समसामयिक काल में संघ लोक सेवा आयोग के साथ–साथ राज्यों के लोक सेवा आयोगों की भूमिका में भी परिवर्तन आ रहा है। आज लोक प्रशासन में विभिन्न विषयों से नवयुवक इस सेवा में प्रवेश कर रहे हैं। आयोग पूरी निष्पक्षता से उनकी भर्ती प्रक्रिया में संलग्न है यद्यपि आज परीक्षार्थियों की संख्या लाखों में फिर भी आयोग के कार्यों में कोई कमी नहीं आई है।

इस प्रकार आयोग के उपर्युक्त कार्य यह स्पष्ट करते हैं कि यह एक प्रकार से परामर्शदाता निकाय है। इसके कार्यों की प्रकृति सलाहकारी किस्म की है। संक्षेप में, आयोग सरकार की जिन मामलों के सम्बन्ध में सलाह देता है, वे हैं– भर्ती के तरीके, नियुक्ति, पदोन्नति तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानान्तरण किये जाने के सम्बन्ध में अपनाये जाने वाले सिद्धान्त और ऐसी नियुक्तियों, पदोन्नतियों तथा स्थानान्तरणों के सम्बन्ध में प्रत्याशियों की उपयुक्तता। इनके अतिरिक्त वह निम्न मामलों के सम्बन्ध में भी सरकार को परामर्श देती है। जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा की प्रशिक्षण संस्थाओं में जो प्रशिक्षण दिया जाये उसमें भौतिक तथा सामाजिक दोनों विज्ञानों का समावेश होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त, प्रशिक्षण–शालाओं में दी जाने वाली प्रशिक्षा में प्रशिक्षणर्थियों का मानसिक दृष्टिकोण पुनर्व्यवस्थित होना चाहिए अन्यथा विश्वविद्यालय के युवा स्नातक, जिन्होंने अपना अध्ययन अभी हाल ही में समाप्त किया है तथा एक भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी के बीच, जो कि बड़े प्रशासनिक उत्तरायित्वों का भार अपने कन्धों पर उठाने जा रहा है, कोई अन्तर नहीं रह जायेगा।

9.3 अखिल भारतीय सेवाएँ

अखिल भारतीय सेवाओं का इतिहास :– भारत में अखिल भारतीय सेवाओं के इतिहास का अध्ययन निम्नलिखित तीन चरणों में किया जा सकता है :–

1. **प्रथम चरण (1853 से 1919)**
2. **दूसरा चरण (1919 से 1947) एवं**
3. **तीसरा चरण (1947 के पश्चात्)**

1. **प्रथम चरण (1853–1919)**:– ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में ही भारतीय सिविल सेवा की स्थापना हुई। तभी से भारत में सेवा का एक अखिल भारतीय केडर विद्यमान है। सबसे पुरानी इण्डियन सिविल सर्विस 1854 में स्थापित हुई तथा सबसे अन्त में ''भारतीय कृषि सेवा'' 1906 में गठित की गयी। इस प्रकार

1919 के भारत शासन अधिनियम के समय निम्नलिखित भारतीय सेवाएँ विद्यमान थी–

1. इण्डियन सिविल सर्विस
2. इण्डियन पुलिस सर्विस
3. इण्डियन फॉरेस्ट सर्विस
4. इण्डियन सर्विस ऑफ इंजीनियर्स
5. इण्डियन एजूकेशन सर्विस
6. इण्डियन एग्रीकल्चर सर्विस
7. इण्डियन वेटेरिनरी सर्विस
8. इण्डियन मेडिकल सर्विस

ये सेवाएँ भारत में नौकरशाही सोपान की सर्वोच्च सीढ़ी थीं। भारत में अंग्रेजी सरकार अपनी शक्ति के लिए प्रधानतः अपने लोक–सेवकों पर निर्भर करती थी।

2. **दूसरा चरण (1919–1947)**:– 1923 में भारत में उच्च लोक–सेवा विषयक शाही आयोग की नियुक्ति लॉर्ड ली की अध्यक्षता में की गयी। इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन 1924 में प्रस्तुत किया। आयोग ने कुछ अखिल भारतीय सेवाओं के जो हस्तान्तरित विषय थे, जैसे भारतीय शिक्षा सेवा, भारतीय कृषि सेवा, भारतीय पशु–चिकित्सा सेवा तथा भारतीय अभियान्त्रिकी सेवा की सड़क और भवन–निर्माण शाखाओं को समाप्त करने की सिफारिश की थी। 1935 के भारत शासन अधिनियम द्वारा इन सेवाओं में कुछ परिवर्तन किये गये। संयुक्त सचिव ने आई0सी0आई0 पी0एस0 और आई0एन0सी0 (सिविल) को चालू रखने की अनुशंसा की थी। 1935 के अधिनियम की धारा 244 में शामिल कर दिया गया था। इस प्रकार 1947 में जब सत्ता का हस्तान्तरण भारतीयों को किया गया केवल दो अखिल भारतीय सेवाएँ–आई0सी0एस0 और आई0पी0एस0 में ही खुली भर्ती की व्यवस्था थी। यह भारत में ब्रिटिश सरकार के फौलादी ढाँचे का आधार थी।

3. **तीसरा चरण (1947 के पश्चात्)**:– पुरानी सेवाओं को गारण्टी देते समय भारत सरकार ने इस बात की आवश्यकता का पूर्वानुमान कर लिया था कि इन सेवाओं के स्थान पर ऐसी सेवा की स्थापना की जानी चाहिए जो भारतीयों द्वारा नियन्त्रित हो तथा जिसमें केवल भारतीय अधिकारी ही हों। अगस्त 1947 में स्वतन्त्रता के पश्चात् ही हमारे देश के समक्ष सेवीवर्ग सम्बन्धी संकट खड़ा हो गया,, जिससे सरकार के कार्यों में बहुत अधिक वृद्धि हुई। फलस्वरूप प्रशिक्षित सेवीवर्ग की आवश्यकताएं बढ़ गयी थी वहीं दूसरी ओर प्रशासकीय सेवाएं कमजोर हो गयी थी।

स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान में अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 321 (2) में भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय हित में, नवीन अखिल भारतीय सेवाओं का गठन करने की शक्ति संसद को प्रदान की गयी है। संसद को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह इन सेवाओं के लिए नियुक्ति किये जाने वाले व्यक्तियों की भर्ती तथा सेवा सम्बन्धी शर्तों का विधि द्वारा विनियमन करे। तद्नुसार संसद ने अक्टूबर 1951 में अखिल भारतीय सेवा अधिनियम पारित किया था। वर्ष 1966 में भारतीय वन सेवा का गठन किया गया।

अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती की पद्धतिः– भर्ती का सामान्य अर्थ होता है किसी कार्य के लिए व्यक्तियों को प्रतियोगिता के आधार पर किसी निर्धारित वेतन–दर पर नियुक्त करना। भर्ती के सम्बन्ध में इस बात पर लगभग सभी सहमत हैं कि लोक–सेवाओं में योग्य, कुशल एवं अनुभवी लोगों की भर्ती की जाये। भर्ती के सम्बन्ध में अलग–अलग देशों में अलग–अलग प्रणाली देखने को मिलती है। योग्यता–प्रणाली आज समस्त देशों में लोक–सेवकों की भर्ती का आधार बन गयी है। भारत में शासकीय कर्मचारियों की भर्ती के लिए बाहर से और भीतर से दोनों ही पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। भारत में प्रत्यक्ष भर्ती निम्नतम पदों तथा युवक प्रवेशार्थियों तक ही सीमित हैं। द्वितीय श्रेणी की भर्ती भी बहुत–सी स्थितियों में लोक–सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षा द्वारा

की जाती है। निम्न श्रेणी से पदोन्नति पाने वालों का अनुपात द्वितीय श्रेणी से प्रथम श्रेणी में पहुँचने वालों की अपेक्षा अधिक होता है। कुछ विभागों में तो द्वितीय श्रेणी के पदों की पूर्णतः पदोन्नति द्वारा ही भरा जाता है। प्रथम श्रेणी की सेवाओं में 25 से 30 प्रतिशत स्थानों को निम्न सेवाओं से पदोन्नत व्यक्तियों के लिए सुरक्षित रखने का प्रावधान है। भारत में संघ सेवाओं में प्रवेश पाने के लिए 21 से 28 वर्ष की आयु निर्धारित की गयी है मोटे तौर पर प्रशासकीय सेवाओं में प्रवेश पाने के लिए स्नातक की उपाधि अनिवार्य होता है। इसलिए भारतीय प्रशासनिक सेवा में डॉक्टर व इंजीनियर स्नातक काफी मात्रा में देखने को मिलते हैं। भारत में लोक–सेवाओं के संगठन के मौलिक सिद्धान्त लगभग वही हैं जो 1854 में मैकॉले की अध्यक्षता में नियुक्त सिविल सर्विसेज आयोग के द्वारा स्थापित किये गये थे।

1979 तक सेवाओं में भर्ती की पद्धतिः– भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती के लिए एक प्रतियोगी परीक्षा आयोजित की जाती है। प्रतियोगी परीक्षा भारतीय प्रशासन सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय लेखा–परीक्षण तथा लेखा–सेवा, भारतीय आयकर सेवा, भारतीय डाक सेवा, भारतीय रेल लेखा–सेवा, केन्द्रीय सचिवालय सेवा आदि सेवाओं के लिए संयुक्त रूप से होती है। 1979 के पूर्व इन सेवाओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया था। पहली श्रेणी में केवल दो सेवाओं को सम्मिलित किया गया था–भारतीय प्रशासन सेवा तथा भारतीय विदेश सेवा। दूसरी श्रेणी में भारतीय पुलिस सेवा को तथा तीसरी श्रेणी में संघीय सेवाओं तथा केन्द्र–शासित देशों की सेवाओं को रखा गया था। परन्तु 1979 में किये गये सुधारों के अनुसार इन श्रेणियों को समाप्त कर दिया गया है। 1979 के पूर्व परीक्षा योजना के दो भाग थे–भाग ''अ'' में ऐसे आवश्यक विषय थे जो प्रत्येक अभ्यर्थी को लेने थे। इसमें 150 अंकों के तीन प्रश्न–पत्र होते थे–सामान्य ज्ञान, सामान्य अंगेजी तथा लेख। भाग ''ब'' के अन्तर्गत वैकल्पिक विषय थे जिनमें से कोई भी अभ्यर्थी अपनी इच्छानुसार विषयों का चयन कर सकता था। इन अंकों का योग 1000 होता था। प्रत्येक प्रश्न–पत्र में कम से कम 40 प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक था, तभी साक्षात्कार हेतु बुलाया जाता था। साक्षात्कार के लिए 300 अंक रखे गये थे। अखिल भारतीय सेवाओं में प्रतियोगी परीक्षा की 1978 तक दो विशेषताएँ थी। पहली यह कि जब समस्त परीक्षार्थी एक संयुक्त परीक्षा में बैठते थे, आई0ए0एस0 और आई0एफ0एस0 (विदेश सेवा) के अभ्यर्थी दो अतिरिक्त विषयों में परीक्षा देते थे, तथा आई0पी0एस0 सेवा के लिए कम विषय थे। दूसरी विशेषता यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतियोगी परीक्षा में बैठने की छूट थी तथा कोई छंटनी नहीं होती थी।

कोठारी समितिः– छंटनी की कोई व्यवस्था न होने के कारण परीक्षार्थियों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि होने लगी। परीक्षार्थियों की इस बढ़ती हुई संख्या को सीमित करने के उपाय सुझाने के उद्देश्य से संघ लोक–सेवा आयोग ने 1975 में एक समिति गठित की जिनके सभापति डॉ0 डी0एस0 कोठारी थे। योग्यता का परीक्षण खुली प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा किया जाता है। इन परीक्षाओं का आयोजन संघ लोक–सेवा आयोग द्वारा किया जाता है। इन परीक्षाओं में सभी नागरिक चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, लिंग और सम्प्रदाय के हों, बैठ सकते हैं। 1975 में गठित कोठारी समिति का काम भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा उच्चतर लोक–सेवाओं में भर्ती के लिए प्रतियोगी परीक्षा के रूप में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करना था। समिति ने मार्च 1976 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसकी सिफारिशें निम्नलिखित थी–

1. सभी सेवाओं के लिए एक समान परीक्षा होनी चाहिए।
2. आई0ए0एस0 तथा उच्चतर सेवाओं की प्रतियोगी परीक्षा दो भागों में होनी चाहिए।
3. प्रमुख परीक्षार्थी में लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार हैं। लिखित परीक्षा अनिवार्य तथा वैकल्पिक विषयों में हैं।
4. सफल परीक्षार्थी को अपने प्रशिक्षण के लिए मसूरी स्थित ''लाल बहादुर शास्त्री नेशनल अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन'' में चला जाना चाहिए।
5. कौन किस सेवा में जायेगा, यह प्रशिक्षणोपरान्त निश्चित किया जायेगा। प्रमुख परीक्षा, प्रशिक्षणोपरान्त परीक्षा तथा साक्षात्कार के अंक जोड़कर तथा परिवीक्षाधीन के अधिमान या इच्छा को ध्यान में रखते हुए विभिन्न सेवाओं में यह सभी बाँट दिये जायेंगे। यह इस समिति की महत्वपूर्ण सिफारिश थी जिसे कुछ संशोधनों व परिवर्तनों के साथ दिसम्बर 1978 में मान लीं तथा भर्ती की नयी प्रणाली 1979 से लागू हो गयी। प्रतियोगी परीक्षा अब दो चरणों में होती है–प्रारम्भिक परीक्षा तथा मुख्य परीक्षा। प्रारम्भिक परीक्षा केवल मुख्य परीक्षा में

बैठने के लिए पात्रता निर्धारित करने हेतु होती है। यह ध्यान देने की बात है कि वही परीक्षार्थी, जो प्रारम्भिक परीक्षा में सफल हो जाता है, मुख्य परीक्षा में बैठ सकता है। अतः प्रारम्भिक परीक्षा छंटनी की परीक्षा है। इस परीक्षा के द्वारा निम्नलिखित सेवाओं में प्रवेश पाया जा सकता है।

- भारतीय प्रशासनिक सेवा
- भारतीय पुलिस सेवा
- भारतीय विदेश सेवा
- भारतीय डाक सेवा, ग्रुप ''ए''
- भारतीय डाक–तार लेखा और वित्त सेवा, ग्रुप ''ए''
- भारतीय लेखा–परीक्षा और लेखा–सेवा, ग्रुप ''ए''
- भारतीय सीमा–शुल्क और केन्द्रीय उत्पादन–शुल्क सेवा, ग्रुप ''ए''
- भारतीय रक्षा लेखा–सेवा, ग्रुप ''ए''
- भारतीय आयकर सेवा, ग्रुप ''ए''

सतीश चन्द्र समितिः– संघीय लोक–सेवा आयोग ने लोक–सेवा परीक्षा के पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन करने के लिए अगस्त, 1988 में सतीशचन्द्र की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। समिति द्वारा लोक–सेवा परीक्षा के समस्त पहलुओं पर सांगोपांग रूप से विचार किया गया। समिति की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं–

- लोक–सेवा मुख्य परीक्षा 1993 में 300 अंकों का निबन्ध प्रश्न–पत्र आरम्भ किया जायेगा।
- साक्षात्कार परीक्षण 300 अंकों का होगा ने कि 250 अंकों का।
- लिखित और साक्षात्कार परीक्षण के कुल अंक 2,050 के स्थान पर 2,300 होंगे।
- लोक–सेवा परीक्षा, 1993 से वैकल्पिक विषयों की सूची में से फ्रांसीसी, जर्मन, चीनी, रूसी, अरबी एवं पाली भाषाओं को हटा दिया गया।

प्रशासनिक सेवाओं के लिए जो उपरोक्त प्रणाली अपनायी जाती है उसकी आलोचकों द्वारा आलोचना की गयी है। प्रथम आलोचना भर्ती पद्धति में क्षेत्रीय भाषाओं में उत्तर देने की है। द्वितीय, भारतीय सेवा के लिए अधिकतम आयु 26 वर्ष रखा जाना भारतीय परिवेश के लिए कम है। कारण यह है कि ग्रामीण क्षेत्र में युवक काफी देर से पढ़ना आरम्भ करते हैं। तृतीय प्रो पॉल ऐपल्बी के अनुसार वर्तमान परीक्षा पद्धति में आधुनिकता तथा वैज्ञानिकता का अभाव है। साक्षात्कार की प्रणाली बहुत पुरानी पड़ गयी है। भारत जैसे विकासशील देश की पुरानी भर्ती में सुधार की आवश्यकता है। इसमें विकसित राज्यों की नवीनता वाली भर्ती पद्धति को अपनाना चाहिए। भर्ती के सम्बन्ध में नये विचारों और नयी खोजों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

प्रशिक्षणः– प्रशिक्षण का अर्थ व्यक्ति को एक निश्चित पद के अनुकूल बनाना है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ नियुक्त अधिकारियों और कर्मचारियों को दिये गये कार्यों की प्रकृति, कला एवं विधि के बारे में व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना है। मुख्य उद्देश्य है लोक–सेवकों के कार्य में शुद्धता एवं स्पष्टता लाने का प्रयास करना, ऐसे लोक–सेवकों का निर्माण करना।

भारत में प्रशिक्षण व्यवस्थाः– ब्रिटिश शासनकाल में प्रशिक्षण का कोई महत्व नहीं था और न ही लोक–सेवकों के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था थी। उस समय आई0सी0एस0 के सदस्यों को ऑक्सफोर्ड अथवा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में एक वर्ष के लिए प्रशिक्षण हेतु भेजा जाता था। प्रशासन के दो प्रमुख कार्य थे पहला शान्ति और व्यवस्था बनाये रखना तथा दूसरा कर वसूल करना। योजना आयोग ने यह महसूस किया कि प्रशासनिक अधिकारियों को विकास के सम्बन्ध में विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण संविधान में वर्णित लक्ष्यों की प्राप्ति के अनुरूप होना

चाहिए, जिससे संसदीय प्रजातन्त्र की परम्परा के प्रति उनमें सम्मान की भावना भर जाये। राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना होना चाहिए। प्रशिक्षण द्वारा ''शासक'' और ''शासित'' के बीच के अन्तर को कम किया जाना चाहिए।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों के लिए भारत में सर्वप्रथम 1947 में दिल्ली में एक प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गयी। 1947 में ही ओ0एण्ड एम0 डिवीजन की भी स्थापना की गयी। 1957 में शिमला में आई0ए0एस0 स्टाफ कॉलेज में अभिनव पाठयक्रम शुरू कर दिया गया जिसमें 6 से 10 वर्ष तक की सेवा कर चुके उच्च पदाधिकारियों को बुलाया गया। 1959 से दिल्ली में आई0ए0एस0 प्रशिक्षण स्कूल में निम्नलिखित पदाधिकारियों के लिए एक संयुक्त पाठ्यक्रम की शुरूआत कर दी गयी –

- भारत प्रशासनिक सेवा
- भारतीय विदेश सेवा
- भारतीय लेखा–परीक्षण तथा लेखा–सेवा
- भारतीय सुरक्षा सेवा
- भारतीय डाक सेवा
- भारतीय आयकर सेवा
- भारतीय आयात–कर तथा आबकारी सेवा।

आजकल भारत में प्रत्येक सेवा में नवीन भर्ती किये गये सदस्यों को प्रशिक्षण देने के लिए उनका अपना प्रशिक्षण संस्थान है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए प्रशिक्षणः– भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों का प्रशिक्षण लाल बहादुर शास्त्री अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी में होता हैं। इनके प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष की होती है। इस अवधि परिवीक्षाधीनों को भारतीय दण्ड–विधि और दण्ड–प्रक्रिया, लोक–प्रशासन के सिद्धान्त, भारत का प्रशासकीय इतिहास, जिले का प्रशासन, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, हिन्दी का प्रारम्भिक ज्ञान, पंचायती राज व्यवस्था, पंचवर्षीय योजनाओं तथा सामुदायिक विकास विषयों की शिक्षा दी जाती हैं। संस्थागत प्रशिक्षण में प्रशासनिक सेवा की बहुत–सी तकनीकी व प्राविधिक बातों का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हो पाता, परन्तु इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए ''कार्य करते हुए प्रशिक्षण'' का प्रावधान है जो वह पदांकित राज्य में जाकर प्राप्त करते हैं। संस्थागत प्रशिक्षण की अवधि में भी प्रशिक्षणार्थियों को कुछ प्रायोगिक शिक्षा दी जाती है जैसे–बागवानी, शारीरिक व्यायाम, मोटर चलाने आदि का प्रशिक्षण राज्यों में ''काम करते हुए प्रशिक्षण'' प्राप्त होता है उसकी अवधि राज्यों में अलग–अलग होती है। इस अवधि में निम्नलिखित बातों का प्रशिक्षण दिया जाता है –

- राज्य सचिवालय में प्रशिक्षण
- जिला कलेक्टर के कार्यालय में प्रशिक्षण
- कोषालय में प्रशिक्षण
- भूमि–अभिलेख और बन्दोबस्त का प्रशिक्षण
- पुलिस कार्यालय में प्रशिक्षण
- विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित विभागों में प्रशिक्षण
- उप–मण्डलीय कार्यालय में प्रशिक्षण
- मजिस्ट्रेट के कार्यों तथा न्यायिक कार्य का प्रशिक्षण

''कार्य करते हुए प्रशिक्षण'' की अवधि में प्रशिक्षणार्थी को कोई उत्तदरायित्व नहीं सौंपा जाता है ताकि

प्रशिक्षणार्थी स्वतन्त्रतापूर्वक प्रशिक्षण प्राप्त कर सके। 1969 में ''सैण्डविच प्रशिक्षण कार्यक्रम'' आरम्भ हुआ है। इसके अन्तर्गत परिवीक्षाधीन राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी में प्रारम्भ में छह माह तक रहता है। इसके बाद वह अपने नियत राज्य में एक वर्ष तक प्रयोगात्मक प्रशिक्षण प्राप्त करता है। इस प्रशिक्षण के बाद वह पुनः 9 सप्ताह के लिए अकादमी में वापस आ जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारियों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण:– सेवाकालीन अधिकारियों को भी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है। इस समिति ने आई0ए0एस0 के चार सप्ताह के कार्यक्रम का मूल्यांकन किया और आई0ए0एस0 अधिकारियों के कैरियर के विभिन्न स्तरों अर्थात् 6–9 वर्षों की सेवा तथा 17–20 वर्षों की सेवा वरिष्ठता वाले समूह के लिए चार सप्ताह के कार्यक्रम की अवधि को कम करके तीन सप्ताह करने का निर्णय लिया। 10–16 वर्षों की वरिष्ठता वाले मध्य समूह के लिए कार्यक्रमों की कार्यप्रणाली व विषय–वस्तु को भी मूलतः परिवर्तित करने का निर्णय लिया गया।

भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारियों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण:– सेवाकालीन अधिकारियों को भी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है। इस समिति ने आई0ए0एस0 के चार सप्ताह के कार्यक्रम का मूल्यांकन किया और आई0एस0एस0 अधिकारियों के कैरियर के विभिन्न स्तरों अर्थात् 6–9 वर्षों की सेवा 10–16 वर्ष की सेवा तथा 17–20 वर्षों की सेवा की वरिष्ठता वाले समूह के लिए चार सप्ताह के कार्यक्रम की अवधि को कम करके तीन सप्ताह करने का निर्णय लिया। 10–16 वर्षों की वरिष्ठता वाले मध्य समूह के लिए कार्यक्रमों की कार्यप्रणाली व विषय–वस्तु को भी मूलतः परिवर्तित करने का निर्णय लिया गया।

भारतीय विदेश सेवा के लिए प्रशिक्षण:– भारतीय विदेश सेवा के नवीन सदस्यों को तीन–वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम से होकर गुजरना पड़ता है। सर्वप्रथम नवीन सदस्यों को लालबहादुर शास्त्री अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी में चार माह का बुनियादी प्रशिक्षण दिया जाता है। तत्पश्चात् इन्हें चार माह के लिए इण्डियन स्कूल ऑफ इण्टरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली में प्रशिक्षण के लिए भेजा जाता है। इन्हें छह माह के लिए विभिन्न जिला कार्यालयों में भेज दिया जाता है। पुनः छह माह के लिए विदेश मन्त्रालय के कार्यालय में प्रशिक्षण हेतु भेजा जाता है। नवीन सदस्यों को कुछ दिनों के लिए सेना के यूनिट में तथा ''भारत दर्शन'' के लिए भी भेजा जाता है।

भारतीय पुलिस सेवा के लिए प्रशिक्षण:– भारतीय पुलिस सेवा के परिवीक्षाधीन को माउण्ट आबू स्थित केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज में प्रशिक्षण दिया जाता था। आजकल भारतीय पुलिस सेवा में प्रवेश पाने वालों को केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, हैदराबाद में प्रशिक्षण दिया जाता है। पुलिस–सेवा में कार्य–कौशल प्रशिक्षण अथवा व्यावहारिक प्रशिक्षण पर अधिक जोर दिया जाता है। प्रशिक्षण के दो भाग होते हैं–प्रथम सैद्धान्तिक और द्वितीय प्रयोगात्मक या व्यावहारिक। प्रशिक्षण के नवीन पाठ्यक्रम में सिण्डीकेट कार्य तथा वर्गीय वाद–विवाद पर अधिक बल दिया गया है। एक वर्ष की अवधि के बाद उसको सहायक पुलिस अधीक्षक के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है, जहाँ अपने वरिष्ठतम सहयोगी के सान्निध्य में रहकर वह कार्य पर प्रशिक्षण प्राप्त करता है।

भारतीय लेखा–परीक्षण तथा लेखा–सेवा का परीक्षण:– भारतीय लेखा–परीक्षण तथा लेखा–सेवा में भर्ती हुए नवनियुक्त अधिकारियों को शिमला में अपने विभाग के प्रशिक्षण स्कूल में एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता हैं। इनके पाठ्यक्रम में लेखांकन, लेखा–परीक्षण, वित्तीय नियन्त्रण, वाणिज्यिक बही खाता, लेखा–संहिताएँ तथा भारतीय संविधान की मुख्य रूप से जानकारी दी जाती हैं। प्रशिक्षण–काल में उन्हें व्यावहारिक अनुभव देने के लिए लेखा कार्यालय तथा जिला राजकोषों से सम्बद्ध कर दिया जाता है। प्रशिक्षण के अन्त में परिवीक्षाधीन अधिकारी को उन विषयों में एक विभागीय परीक्षा भी उत्तीर्ण करनी होती है।

आय–कर सेवा का प्रशिक्षण:– आय–कर सेवा के परिवीक्षाधीन अधिकारियों को प्रशिक्षण विभागीय प्रशिक्षण विद्यालय, नागपुर में दिया जाता है। प्रशिक्षण की अवधि 18 माह होती है। इनका प्रशिक्षण भारतीय लेखा–परीक्षण तथा लेखा–सेवा के प्रशिक्षण के समान ही होता है।

भारतीय रेल सेवा के लिए प्रशिक्षण:– भारतीय रेल सेवा के अधिकारियों को प्रशिक्षण रेलवे स्टॉफ कॉलेज, बड़ौदा में दिया जाता है। नवनियुक्त अधिकारियों को यहाँ यातायात, परिवहन, रेलवे नियमों, दुर्घटना–राहत विधियों तथा यात्रियों के कल्याण से सम्बन्धित बातों का प्रशिक्षण दिया जाता है। ''कार्य करते हुए प्रशिक्षण'' के लिए इन्हें विभिन्न रेल कार्यालयों में भेज दिया जाता है। नवनियुक्त अधिकारियों को साढे तीन महीने का प्रशिक्षण–दो माह

आरम्भ में तथा डेढ़ माह प्रशिक्षण के द्विवर्षीय कार्यक्रम के मध्य में दिया जाता है।

भारतीय पोस्टल सेवा के लिए प्रशिक्षणः— भारतीय पोस्टल सेवा के अधिकारियों को पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ ट्रेनिंग केन्द्र, सहारनपुर में प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष होती है। प्रारम्भिक चार माह का प्रशिक्षण सहारनपुर में स्थापित ट्रेनिंग केन्द्र के दिया जाता है। इसके बाद समय—समय पर पुनः इस प्रशिक्षण केन्द्र में नवीनीकरण पाठ्यक्रम या रिफ्रेशर पाठ्यक्रम के लिए बुलाया जाता है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत में प्रशिक्षण कार्यक्रम संख्या क्षेत्र तथा प्रगति की दिशा में आगे बढ़ते जा रहे हैं। पुर्नवालोकन तथा रिफ्रेशर पाठ्यक्रमों पर अधिक बल दिया जा रहा है गोष्ठियां सम्मेलन, वर्कशॉप लोकप्रिय होते जा रहे हैं। अब सेवाओं की आवश्यकता और अनिवार्यता को ध्यान में रखकर व्यवहारिक प्रशिक्षण पर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा है। ज्यों—ज्यों प्रशासनिक कार्य जटिल होते जा रहे हैं त्यों—त्यों सरकार प्रशिक्षण की अनिवार्यता को अधिक बल देने लगी है।

9.4 सारांश

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में विद्यमान दोषों को समाप्त करने के लिए प्रशिक्षण को और अधिक आकर्षक एवं उपयोगी बनाने पर बल दिये जाने की आवश्यकता है। यह जरूरी है कि केन्द्रीय तथा राज्य शासन अपने लोक सेवकों को प्रशिक्षण के लिए उत्साहित करे।

यद्यपि की भारत में लोक सेवाओं एवं अन्य कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण की जो पद्धतियां अपनायी गयी हैं वे पूर्णतः दोषमुक्त नही हैं। इस सम्बन्ध में डॉ0 अवस्थी और माहेश्वरी का कथन है कि सर्वप्रथम प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संख्या एवं प्रकार में आवश्यकता से अधिक वृद्धि हुयी है। इसी बीच ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भी आयोजन होने लगा है जो आकर्षक तो अवश्य होते है परन्तु आवश्यक नही। इनमें प्रशासनिक की वास्तविक समस्याओं पर सही विचार नही होता। द्वितीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम विशेषकर लोक प्रशासन द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों एवं जिन चुनौतियों का उन्हें सामना करना पड़ता है। उनकी दृष्टि से व्यवहारिक एवं उद्देश्यपूर्ण नहीं होते। तृतीय प्रशिक्षण का सेवी प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता है। चतुर्थ प्रशिक्षण में तकनीकी अध्ययन करने वालों को मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की शिक्षा नही दी जाती है तथा सामान्य अध्ययन करने वालों को विज्ञान आदि बातों की जानकारी नहीं दी जाती है। अतः प्रशिक्षणार्थी का बहुमुखी विकास नही हो पाता है। इस दिशा में इसे और अधिक व्यवहारिक बनाये जाने की आवश्यकता है।

9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **भारतीय प्रशासनः**— डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा।
2. **भारतीय प्रशासनः**— प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, ओमेगा पब्लिकेशन दिल्ली।
3. **कार्मिक प्रशासनः**— सुरेन्द्र कटारिया, आर0बी0एस0ए0 प्रकाशक, जयपुर।

9.6 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः—

1. संघ लोक सेवा आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट किसे सौंपता है?
   - (a) ग्रह मंत्री को
   - (b) राष्ट्रपति को
   - (c) संसद को
   - (d) सुप्रीम कोर्ट को

2. संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों व अध्यक्ष का कार्यकाल होता है–

(a) 4 वर्ष

(b) 5 वर्ष

(c) 6 वर्ष

(d) 7 वर्ष

3. अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन कौन कर सकता है?

(a) राष्ट्रपति

(b) संघ लोक सेवा आयोग

(c) 2/3 बहुमत से राज्यसभा

(d) 2/3 बहुमत से लोकसभा

लघुउत्तरीय प्रश्नः–

1. संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों पर प्रकाश डाले।

2. अखिल भारतीय सेवाएं से क्या अभिप्राय है?

3. अखिल भारतीय सेवाओं ओर केन्द्रीय सेवाओं में क्या अन्तर है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः–

1. अखिल भारतीय सेवा भारत की एकता और अखंडता में सहायक है स्पष्ट करें।

2. भारतीय लोक सेवा आयोग पर एक संक्षिप्त लेख लिखें।

खण्ड–3

इकाई–10 राज्य प्रशासन की संवैधानिक रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्‌देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 राज्य प्रशासन की संवैधानिक रूपरेखा

10.3 निदेशालय और सचिवालय में संबंध

10.4 सारांश

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.6 बोध प्रश्न

10.0 उद्‌देश्य

- इस इकाई को अन्तर्गत हम राज्य प्रशासन से संबंधित संविधानिक उपबन्धों तथा शासन/प्रशासन की कार्यवाहियां किस प्रकार उपबंधी संविधान के द्वारा चलाई जाती है के बारे में चर्चा करेंगे।
- हम यह व्याख्या कर सकेंगे कि राज्य के शासन/प्रशासन में राज्यपाल तथा मुख्यमन्त्री की भूमिका तथा उनकी शक्तियाँ है।
- हम मन्त्रिपरिषद का राज्य के कामकाज के बारे में तथा इसके साथ–साथ नौकरशाही व्यवस्था के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

संविधान में भारत के लिए राज्यों का संघ शब्दों का प्रयोग किया गया है। डॉ0 अम्बेडकर ने 'राज्यों के संघ' शब्दावली के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा था, ''यद्यपि भारत एक संघ है, परन्तु वह संघ–राज्यों के किसी प्रकार के पारस्परिक समझौते का परिणाम नहीं है और संघ–राज्य समझौते का परिणाम न होने के कारण किसी भी राज्य को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं है। संक्षेप में राज्य प्रशासन की मूलभूत विशेषताएं हैं– राज्य प्रशासन का स्वतंत्र अपना अस्तित्व, राज्यों के लिए पृथक संविधान का अभाव, राज्य प्रशासन वित्तीय दृष्टि से केन्द्र पर अधिक आत्मनिर्भर, संकटकाल में राज्य प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन के अधीन, एकीकृत न्याय व्यवस्था, राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, प्रशासन में अखिल भारतीय सेवा का प्रवेश, राज्य सचिवालय राज्य प्रशासन का हृदय, स्थानीय प्रशासन राज्य के अधीन, राज्य द्वारा नीतियों को लागू करना, आदि। आज राज्य प्रशासन विकास प्रशासन का रूप लेता जा रहा है। संक्षेप में भारत में राज्यों की स्थिति वैसी स्वतंत्र और शक्ति सम्पन्न नहीं है जैसी अमेरिकी राज्यों की है। हमारा संविधान संघात्मक और एकात्मक का सम्मिश्रण है। हमने सहकारी संघवाद की स्थापना की है जिसमें दोनों सरकारे अपने–अपने क्षेत्रों में शक्ति सम्पन्न हैं और एक–दूसरे की पूरक हैं।

10.2 राज्य प्रशासन का संवैधानिक ढांचा

भारत का संविधान संघात्मक है, यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 1 में इसे राज्यों का संघ कहा गया है। संघात्मक शासन में राष्ट्रीय तथा इकाई राज्यों में शासन की दो पृथक व्यवस्थाएं होती हैं। इसमें दुहरी नीतियां पायी जाती हैं। एक ही राज्य के ढांचे के अन्तर्गत राष्टीय तथा क्षेत्रीय शासन में सह–अस्तित्व रहता है। दोनों ही शासन संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हैं तथा संविधान द्वारा सुनिश्चित सीमाओं के अन्तर्गत दोनों ही सर्वोच्च होते हैं। संघवाद दोनों ही शासन–व्यवस्थाओं में समान स्तर की मान्यता पर आधारित है। उनमें से कोई

एक अन्य दूसरे की कृति नहीं है। न्यायिक स्तर तथा वैधानिक व्यक्तित्व दोनों के लक्षण हैं। राज्य के राजनीतिक और प्रशासनिक संगठन केन्द्र के समकक्ष हैं। केन्द्र में राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् संसद, सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति राज्य में राज्यपाल, मंत्रिपरिषद् विधायिका तथा उच्च न्यायालय के समकक्ष है। निर्वाचन आयोग, राष्ट्रीय शासन, राज्य सचिवालय, जिला प्रशासन, पंचायती राज और स्थानीय स्वशासन राज्य के संवैधानिक दायित्व के अन्तर्गत हैं।

भारतीय संविधान में राज्यों के लिए संघ राज्य शब्द का प्रयोग न करके राज्यों का संघ प्रयोग किया गया है। राज्यों का संघ शब्द का प्रयोग भारत की एकता पर अधिक जोर देता है। यह भारत में राज्यों को राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय धारा के विपरीत जाने की अनुमति नहीं प्रदान करता है। भारत में राज्य प्रशासन के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं:–

1. **राज्य प्रशासन का पृथक अस्तित्व**– भारतीय संविधान द्वारा राज्य प्रशासन के पृथक अस्तित्व को मान्यता दी गयी है। संविधान द्वारा संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया।
2. **राज्य के लिए पृथक संविधान का अभाव**– भारत की संघीय व्यवस्था में अमेरिका व स्विस व्यवस्थाओं की भांति राज्यों के लिए पृथक संविधान की व्यवस्था नहीं है।
3. **राज्य प्रशासन संकट काल में केन्द्रीय प्रशासन के अधीन**– भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रीय संकट काल में संघीय संसद राज्य सूची के विषयों पर कानूनों का निर्माण कर सकती है। संकटकालीन स्थिति में संघ की कार्यपालिका को यह शक्ति मिल जायेगी कि वह राज्य की कार्यपालिका को निर्देश दे सके।
4. **राज्य प्रशासन की वित्तीय दृष्टि से केन्द्र पर निर्भरता**– भारतीय संघ राज्य प्रशासन वित्तीय दृष्टि से बड़ी सीमा तक केन्द्र पर निर्भर है। केन्द्र राज्यों को विभिन्न प्रकार के अनुदान देता है। इसके फलस्वरूप केन्द्र राज्यों पर छाया रहता है।
5. **राज्य प्रशासन में अखिल भारतीय सेवाओं की स्थिति**– हमारे देश में भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा तथा भारतीय वन सेवा अखिल भारतीय सेवाएं है। इनकी भर्ती व नियंत्रण संघ लोक सेवा आयोग करता है। किन्तु इन सेवाओं के अधिकारी राज्य सचिवालय और समस्त उच्च पदों पर रहते हैं।
6. **राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा**– राज्यपाल राज्य प्रशासन का अध्यक्ष है और राज्य की समस्त प्रशासनिक शक्ति राज्यपाल में ही निहित होती है। किन्तु राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और वे राष्ट्रपति के प्रसाद–पर्यन्त अपने पद पर रहते हैं।
7. **राज्य प्रशासन का केन्द्र बिन्दु**– प्रत्येक राज्य की राजधानी में राज्य सचिवालय होता है। जो राज्य प्रशासन में महत्वपूर्ण प्रशासन की इकाई है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सरकार के सभी कार्यकर्ता व उसके समस्त कार्यों को जैसे नीति निर्माण, नीति क्रियान्वयन, कार्यक्रमों का क्रियान्वयन इत्यादि करता है।

राज्यपाल का पद– औपचारिक अर्थ में राज्यपाल राज्य सरकार का संवैधानिक अध्यक्ष है, किन्तु सच्चे अर्थ में वह केन्द्र का दूत है। वह दो स्थितियों में रहकर अपनी भूमिका निभाता है–राज्य की सरकार के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में तथा केन्द्र व राज्य सरकार के बीच जोड़ने वाली कड़ी के रूप में। सामान्यकाल में, वह केन्द्र के एक प्रभावशाली यंत्र के रूप में काम करता है, असामान्य काल में राज्य सरकार की समस्याओं से निपटने के लिए वह, जहां तक संभव हो, नई दिल्ली में स्थित अपने वास्तविक स्वामियों की इच्छाओं के अनुसार कदम उठाता है। राज्य के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में राज्यपाल को प्रमुख विविध रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. **औपचारिक या नाममात्र का राज्य प्रमुखः**– भारतीय शासन व्यवस्था में जनता के चुने गए प्रतिनिधियों को वास्तविक कार्यपालिका शक्तियां दी गयी हैं। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार राज्यपाल मुख्यमंत्री और उसके मंत्रिपरिषद् की सलाह से ही अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करता है और इस प्रकार उसे लगभग पूरी तरह मुख्यमंत्री और उसके दल पर निर्भर रहता है।

2. **विशिष्ट दायित्वों का निर्वाह करने वाले राज्य प्रमुख के रूप में**:— असम का राज्यपाल खनन रॉयल्टी में साझेदारी से संबंधित विवादों पर अपने विवेक का इस्तेमाल करता है तथा इसी प्रकार नागालैंड के राज्यपाल को राज्य में शांति व्यवस्था कायम करने की विशेष जिम्मेदारी का पालन करना होता है और इन सभी कर्तव्यों को निभाने के लिए मंत्रिपरिषद् की सलाह लेना उसके लिए अनिवार्य नहीं होता है।

3. **एक प्रशासक के रूप में राज्यपाल**:— राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद राज्यपाल को राष्ट्रपति की ओर से एक प्रशासक के तौर पर अपना कर्तव्य निभाता है। पूरा मंत्रिपरिषद् राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल में समाहित हो जाती है। सामान्य परिस्थितियों में भी जब किसी दल को सदन में स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब राज्यपाल को मुख्यमंत्री की सलाह स्वीकार करना अनिवार्य नहीं होता। सदन के पटल पर हारे हुए मुख्यमंत्री की बात पर अमल करने या न करने पर निर्णय लेना और राजनीतिक अनिश्चितता के दौर में अनैतिक दबावों से बचते हुए निष्पक्ष निर्णय लेना राज्यपाल का विशेष कर्तव्य होता है। इस तरह वह परिस्थितिवश विवेकाधिकार प्राप्त कर लेता है।

प्रशासक के रूप में अनेक राज्यपालों ने अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है। उदाहरण के तौर पर गुजरात के राज्यपाल ने अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक अधिकारों को सुनिश्चित करने का अथक प्रयास किया। राज्य के डांग जिले में जनजातियों के अधिकारों को बहाल करने और वन नीति में आवश्यक सुधार कराने का सफल प्रयास राज्यपाल ने किया। 1985 में आंध्र प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल के रूप में डॉ0 शंकर दयाल शर्मा ने राज्यपालों के राष्ट्रीय सम्मेलन में केन्द्र सरकार से राज्य के विभिन्न प्रोजेक्टों को स्वीकृत करने की विनती की जबकि केरल तत्कालीन राज्यपाल के रूप में बी0बी0 गिरी ने केरल के वाजिब अधिकारों के लिए योजना आयोग से जबरजस्त विरोध जताया। इस तरह भारतीय राजनीति के 70 वर्षों के इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं जिसमें राज्यपालों ने संवैधानिक प्राविधानों के अन्तर्गत सामान्य परिस्थिति में भी महत्वपूर्ण सकारात्मक भूमिका निभाई है। अनुच्छेद 167 के अन्तर्गत राज्यपाल प्राप्त प्राधिकारों का इस्तमाल करके भी अपना प्रभाव प्रशासन पर डाल सकता है। परंतु कभी—कभी राज्यपाल प्रशासनिक कार्यों में अपनी भूमिका प्रत्यक्षतः निभाने के कारण विवाद का विषय भी बन जाता है।

भारतीय संविधान में उल्लिखित प्रावधानों से यह स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माताओं की धारणाओं के अनुसार सामान्य परिस्थितियों में राज्यपाल एक संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा लेकिन विशेष परिस्थितियों में उसकी भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है। श्री एम0वी0 पाईली के अनुसार राज्यपाल मंत्रिमण्डल का सूझ—बूझ वाला परामर्शदाता है जो राज्य की अशांत राजनीति में शांत वातावरण तैयार कर सकता है। श्री डी0डी0 बसु और एम0सी0 शीतल वार्ड ने अपनी रचनाओं में राज्यपाल की स्वविवेक शक्ति का वर्णन किया है। जैसेः— मुख्यमंत्री की नियुक्ति, मंत्रिमण्डल को भंग करना, विधानसभा का अधिवेशन बुलाना और भंग करना आदि।

इस प्रकार यह सही है कि की राष्ट्रपति की भांति राज्यपाल भी राज्य का नाम मात्र का संवैधानिक प्रधान होता है और दोनो ही अपने अपने प्रशासनिक संरचनाओं में नामधारी अध्यक्ष हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि केन्द्र पर संसदीय शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति को जो स्थिति प्राप्त है वही राज्य के शासन में राज्यपाल को है।

मुख्यमंत्री— मुख्यमंत्री राज्य के प्रशासन में मुख्यमंत्री वास्तविक अध्यक्ष है। इस नाते, राज्य के प्रशासनिक संगठन में उसकी वही स्थिति मालूम होती है जो केन्द्रीय सरकार में प्रधानमंत्री को प्राप्त है। वह मंत्रिपरिषद् का अध्यक्ष है और उसकी बैठकों में सभापतित्व करता है; वह तय करता है कि उसकी कैबिनेट के संगठन में कब और क्या परिवर्तन होने चाहिए; वह राज्यपाल को उसकी शक्ति का प्रयोग करने में सहायता व परामर्श देता है, वह यह भी तय करता है कि कैबिनेट की बैठक में विचार के लिए क्या विषय लाए जायें, वह यह भी तय करता है कि विधान मण्डल का अधिवेशन बुलाने व स्थगित करने तथा विधान सभा को भंग करने के बारे में क्या परामर्श दिए जाएं, इत्यादि। यदि मुख्यमंत्री अपना त्यागपत्र दें तो उसका आशय सारे मंत्रिमण्डल का विघटन होता है। यह सभी उदाहरण दिखाते हैं कि राज्य में मुख्यमंत्री बहुत हद तक केन्द्र प्रधानमंत्री की तरह है।

शक्तियां और कार्य:— जैसा हम पहले कह चुके हैं, राज्य में मुख्यमंत्री की स्थिति केन्द्र के समान है। मुख्यमंत्री की शक्तियों और कार्यों को इस प्रकार अंकित किया जा सकता है।

(क) वह राज्य की सरकार का वास्तविक अध्यक्ष है और इस तरह वह राज्यपाल को अपने मंत्रियों व उप—मंत्रियों

की नियुक्ति व उनके विभागों के परिवर्तन या उनके त्यागपत्र स्वीकार करने या अस्वीकार करने के बारे में राय देता है।

(ख) वह मंत्रिपरिषद् की बैठकों में सभापतित्व करता है और देखता है कि मंत्रिपरिषद् के सामूहित उत्तरदायित्व का सिद्धान्त बना रहे। इसलिए वह किसी मंत्री से यह कहता है कि वह त्यागपत्र दे क्योंकि वह कैबिनेट की नीति से सहमत नहीं है या वह राज्यपाल को राय देकर उस मंत्री को अपदस्थ करा सकता है।

(ग) वह राज्य के प्रशासनिक विषयों तथा विधायन सम्बन्धी प्रस्तावों से राज्यपाल को अवगत करता है।

(घ) राज्य के प्रशासन तथा विधायन सम्बन्धी प्रस्तावों के बारे में कैबिनेट द्वारा लिए गए निर्णयों से वह राज्यपाल को सूचित रखता है।

(ङ) यदि राज्यपाल चाहे तो वह किसी मंत्री के निर्णय को मुख्यमंत्री कैबिनेट के सामने विचार हेतु रख सकता है।

(च) वह राज्यपाल तथा मंत्रिपरिषद् के बीच संचार की कड़ी के रूप में कार्य करता है। यदि कोई मंत्री राज्यपाल से मिलना चाहे या राज्यपाल किसी मंत्री से बातचीत करना चाहे तो मुख्यमंत्री को उसकी पूर्व सूचना मिलनी चाहिए।

(छ) मुख्यमंत्री विधान मण्डल तथा मंत्रिपरिषद् के बीच संचार की कड़ी है। वह राज्यपाल को राय देता है कि विधान मण्डल का सत्र कब बुलाया जाए कब स्थगित किया जाए और विधान सभा को कब भंग किया जाए। वही तय करता है कि कैबिनेट के निर्णयानुसार कौन–कौन से बिल विधान मण्डल में पेश किए जाएं और विपक्ष द्वारा किये गये आघात का किस तरह मुकाबला किया जाये। मुख्यमंत्री जानता है कि वह और उसका मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी हैं।

(ज) वह बहुमत वाले दल का नेता हैं इसलिए वह सावधान रहता है कि कहीं पार्टी में फूट न पड़ जाए। वह संसदीय दल में सचेतकों को नियुक्त करता है और यह देखता है कि उसके आदेशों का पार्टी के सदस्य पालन कर रहे हैं या नहीं।

(झ) एक प्रथा के अनुसार केन्द्रीय सरकार को राज्य में राज्यपाल नियुक्त करने से पूर्व वहां के मुख्यमंत्री से परामर्श लेना चाहिए।

(ञ) वह किसी भी समय अपना त्यागपत्र दे सकता है और उसके साथ राज्यपाल को यह राय दे सकता है कि किस नेता को उसका उत्तराधिकारी बनाया जाए या राज्य में संकटकालीन शक्ति का प्रयोग किया जाये। मुख्यमंत्री की ऐसी राय का मानना या न मानना राज्यपाल के विवेक पर निर्भर है।

मंत्री परिषद्– संविधान में कहा गया है कि मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिपरिषद् होती जो राज्यपाल को सहायता व परामर्श देगी सिवाय उन विषयों के जहां संविधान ने उसे विवेक से काम करना अनिवार्य ठहराया है। जैसे हम पहले कह चुके हैं, मंत्रिपरिषद् का वास्तविक निर्माता मुख्यमंत्री है जो अपने सहयोगियों की सूची तैयार करता है जिसे राज्यपाल को पेश करता है और जिसके अनुसार राज्यपाल सारे मंत्रियों को पद व गोपनीयता की शपथ दिलाता है। वास्तव में, यह काम मुख्यमंत्री का है कि वह अपने सहयोगियों का संकलन में अनेकों गंभीर समस्याएं पैदा होती हैं जिनकेक समाधान के लिए मुख्यमंत्री दिल्ली की यात्रा करता है या देश की राजधानी में विराजमान महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नेताओं के सहयोग से मामले सुलझते हैं।

उत्तरदायित्वः– चूँकि राज्यों के स्तर पर भी संसदीय शासन–प्रणाली अपनाई गई है, मुख्यमंत्री के अधीन मंत्रिपरिषद् को विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत तौर पर राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी है, क्योंकि मंत्रिगण राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष की प्रसन्नताकाल में ही पदासीन रह सकते हैं। वास्तव में, यह दायित्वविधान सभा सरकार को हटा सकती है। विधान सभा के सदस्य मंत्रि–परिषद् से प्रश्न पूछ सकते हैं जिनका संतोषजनक उत्तर मिलना चाहिए। यदि सरकारी बिल गिर जाए, या बजट में कटौती कर दी जाए, या सरकारी नीति को सदन का समर्थन प्राप्त न हो सके, या विधान सभा अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे, तो मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ेगा। राज्यपाल नई सरकार बनाने का प्रयास करेगा या भारत सरकार को सुझाव देगा कि संविधान

के अनुच्छेद 356 के अनुसार आपातकाल की घोषणा लागू कर दे जिससे राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सके।

इस स्थल पर जो बात हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करती है वह यह है कि राज्य की सरकार केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी है। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि राज्य की सरकारें केन्द्र के कानून तथा राष्ट्रपति द्वारा प्रेषित निर्देशों को निष्ठा के साथ लागू करने पर बाध्य हैं। यदि केन्द्र सरकार किसी राज्य के आचरण से संतुष्ट न हो, वह अपनी ओर से या राज्य के राज्यपाल की रिपोर्ट पर अनुच्छेद 356 का प्रयोग करके कहां की सरकार को अपदस्थ कर सकता है। इसके अलावा, यह केन्द्र की इच्छा पर निर्भर है कि वह पूरी तरह राज्य की सरकार को भंग कर दे या उसे स्थगित संप्राणता की स्थिति में रखे। क्योंकि अनुच्छेद 356 का प्रयोग दलगत राजनीति के दाव–पेंच को देखते को देखते हुए किया जाता है इसलिए एक उचित रूप से निर्मित राज्य सरकार को केन्द्रीय सरकार अपने शत्रुतापूर्ण भाव से किसी भी समय समाप्त कर सकती है या अपने मित्रतापूर्ण व्यवहार को देखते हुए किसी विफल राज्य सरकार को क्षमा दान भी कर सकती है। इससे विदित होता है कि राज्य का मंत्रिपरिषद् अन्तिम रूप से केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी हैं।

10.3 राज्य प्रशासन में सचिवालय–निदेशालय सम्बन्ध

राज्य शासन के तीन प्रमुख अवयव माने जाते है, मंत्री या राजनैतिक प्रमुख सचिव या प्रशासनिक प्रमुख एवं कार्यकारी प्रमुख। तथापि राज्य–स्तरीय प्रशासन एवं प्रबन्ध का कार्य दो प्रमुख इकाइयों–सचिवालयों एवं निदेशालयों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। भारत में राज्य स्तरीय प्रशासन में सचिवालय एवं निदेशालयों के अधिकारों एवं कर्तव्यों के बीच बड़ी विवादास्पद स्थिति है।

राज्य सरकार के विभाग में दो पृथक संरचनाएं होती है, सचिवालय शाखा एवं कार्यकारी विभाग शाखा। जब हम सचिवालय की बात करते हैं तो हमारा सीधा तात्पर्य सरकार या मंत्रालय से होता है। वहीं दूसरी ओर निदेशालय या कार्यकारी विभाग से आशय सरकार के अधीन काम करने वाली संस्था से है।

सचिवालय सर्वोच्च नीति निर्माता निकाय है। सचिवालय के तहत कतिपय संस्थाओं का एक जाल होता है जो नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्राथमिक रूप से जिम्मेदार होता है। इन संस्थाओं को प्रशासन की शब्दावली में 'कार्यकारी संस्थाए' कहा जाता है। कार्यकारी संस्थाओं का प्राथमिक उत्तरदायित्व अपने नियंत्रण के तहत क्षेत्रीय संस्थाओं के माध्यम से सरकार की नीतियों को क्रियान्वयन करना है।

कार्यकारी विभागों का प्रमुख अलग–अलग नामों से जाना जाता है, परन्तु साधारणतया उसे विभागाध्यक्ष के नाम से सम्बोधित किया जाता है। वह आमतौर से तकनीकी व्यक्ति होता है। जो मंत्रालय के तकनीकी परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है।

सचिवालय का सम्बन्ध मूलतः नीति–निर्माण से है। वहीं निदेशालय क्रियान्वयन के लिए प्राथमिक रूप से जिम्मेदार संस्था है। सचिवालय का प्रशासनिक प्रमुख सामान्यज्ञ होता है। जबकि निदेशालय की अध्यक्षता करने वाला विभागाध्यक्ष तकनीकी रूप से विशेषज्ञ व्यक्ति होता है।

राज्य प्रशासन में सचिवालय एवं निदेशालय के बीच उचित सम्बन्ध कतिपय दशकों से विवाद एवं बहस का विषय रहा है। सचिवालय प्रायः यह शिकायत करता है कि 1. विभागाध्यक्ष उनके पास व प्रस्ताव भेजते हैं जो पूर्ण रूप से तैयार नहीं होते। 2. कभी–कभी विभागाध्यक्ष उन मामलों में निर्णय नहीं लिया करते जहां उन्हें शक्तियां दी गयी होती हैं।

दूसरी ओर निदेशालय यह महसूस करते हैं कि 1. सचिवालय ने सभी महत्वपूर्ण शक्तियों को केन्द्रीकृत कर दिया है और 2. सचिवालय अपने वास्तविक कार्यों को भूल गए हैं तथा कार्यकारी विभागों से अधिक कार्य करवाते हैं। दोनों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों को निपटाने के लिए निम्न सुझाव हैं–

1. सचिवालय एवं कार्यकारी संस्था के बीच अलग एवं स्पष्ट विभाजक रेखा होनी चाहिए।
2. सचिवालय का व्यवसायीकरण किया जाये।
3. कार्यकारी संस्था के प्रमुख को मन्त्रालय या विभाग का विशिष्ट सचिव का पद प्रदान किया जाय।

4. जहाँ तक सम्भव हो दोनों को एक ही (सचिवालय) प्रांगण में स्थापित किया जाय।

5. दोनों के बीच उच्च–अधीनस्थ का सम्बन्ध न होकर सामंजस्यपूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध होना चाहिए।

6. शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए।

10.4 सारांश

राज्य प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं राज्य प्रशासन का स्वतन्त्र अपना अस्तित्व, राज्यों के लिए पृथक संविधान का अभाव, राज्य प्रशासन वित्तीय दृष्टि से केन्द्र पर अधिक आत्मनिर्भर, संकट काल में राज्य प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन के अधीन, एकीकृत न्याय व्यवस्था, राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, राज्य प्रशासन में अखिल भारतीय सेवा का प्रवेश, राज्य सचिवालय राज्य प्रशासन का ह्रदय, स्थानीय प्रशासन राज्य के अधीन, राज्य द्वारा नीतियों को लागू करना आदि।

आज राज्य प्रशासन विकास प्रशासन का रूप लेता जा रहा है कहा जा सकता है कि भारत में राज्यो ं की स्थिति वैसी स्वतन्त्र और शक्ति सम्पन्न नही है जैसी अमरीकी राज्यों की है हमारा संविधान संघात्मक और एकात्मक का सम्मिश्रण है। हमने सहकारी संघवाद की स्थापना की है जिसमें दोनो सरकारे अपने–अपने क्षेत्रों में शक्ति सम्पन्न हैं और एक दूसरे की पूरक हैं।

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **भारतीय लोक प्रशासन** :– शालिनी वाधवा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।

2. **भारतीय प्रशासन** :– प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन दिल्ली।

3. **भारतीय प्रशासन** :– डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।

4. **भारत में लोक प्रशासन** :– बी0एल0 फाड़िया, साहित्य भवन, आगरा।

10.6 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. राज्य प्रशासन का संवैधानिक रूपरेखा की व्याख्या संविधान के किस भाषा में किया गया?
   (a) भाग 1
   (b) भाग 2
   (c) भाग 3
   (d) भाग 4

2. अनुच्छेद 153 सम्बन्धित है–
   (a) राज्यपाल का पद
   (b) राज्यपाल का कार्यकाल
   (c) राज्यपाल का अधिकार
   (d) राज्यपाल की नियुक्ति

3. मृत्युदंड को माफ कर सकता है–
   (a) राज्यपाल
   (b) मुख्यमंत्री

(c) प्रधानमंत्री

(d) राष्ट्रपति

लघुउत्तरीय प्रश्न :–

1. राज्य प्रशासन क्या है?
2. मंत्रिपरिषद् के उत्तरदायित्व पर टिप्पणी करें।
3. विधानमंडल के संरचना कार्य व शक्तियाँ क्या है?
4. अनुच्छेद 173 किससे सम्बन्धित है?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न :–

1. राज्यपाल की अध्यादेश जारी करने के संबंध में उसकी शक्तियों की विवेचना करें।
2. राज्य विधानमण्डल के विशेषाधिकारों का वर्णन करें।

इकाई–11 राज्य सचिवालय : संगठन एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 राज्य सचिवालय : संगठन एवं कार्य

11.3 सारांश

11.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.5 बोध प्रश्न

11.0 उद्देश्य

- इस इकाई को पढ़ने के बाद हमें यह ज्ञान प्राप्त होगा कि राज्य सचिवालय का संगठन किस प्रकार किया जाता है इसके साथ–साथ सचिवालय के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न विभागों के कार्यों का निष्पादन कैसे करते हैं।
- सचिवालय विभाग तथा कार्यकारी के बीच क्या अन्तर तथा उनके बीच होने वाले सम्बन्धों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इस इकाई के अन्तर्गत मुख्य सचिव के पद तथा उसके कार्यों के बारे में भी चर्चा करेंगे।
- राज्य सचिवालय की राजनैतिक स्थिति के बारे मे बात करेंगे।

11.1 प्रस्तावना

भारत में आधुनिक सचिवालयीय व्यवस्था की शुरुआत ब्रिटिश शासन के समय इम्पीरियल सेक्रेटेरियट के रूप में हुई थी जो अब केन्द्रीय सचिवालय कहलाता है। जिस प्रकार केन्द्रीय सचिवालय, भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों का सामूहिक रूप है, उसी प्रकार राज्य सरकार के समस्त मन्त्रालय/विभाग सम्मिलित रूप से राज्य शासन सचिवालय के नाम से जाने जाते हैं। राज्य सचिवालय, राज्य की राजधानी में स्थित होते हैं।

राज्य प्रशासन के पिरामिड के शीर्ष पर राज्यपाल और मंत्रिपरिषद् होते हैं। राज्यपाल नाममात्र और मंत्रिपरिषद् वास्तविक कार्यपालिका है। सूत्र अभिकरण के रूप में सचिवालय, कार्यकारी विभाग, निंयामक आयोग एवं लोक उपक्रम हैं। राज्य का समस्त शासकीय कार्य राज्य सचिवालय द्वारा होता है। प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से राज्य प्रशासन का प्रशासनिक ढाँचा अनेक विभागों में विभाजित होता है। एक मन्त्रालय दो या अधिक विभाग का राजनीतिक प्रमुख है। सचिव, लोक सेवा अधिकारी तथा प्रशासनिक विभागाध्यक्ष होता है। सचिवालय विविध विभागों की वह संरचना है जिसका राजनीतिक प्रमुख एक मन्त्री तथा प्रशासनिक प्रमुख सचिव होता है।

11.2 राज्य सचिवालय का संगठन

सरकार द्वारा निर्मित कानूनों को क्रियान्वित करने, नीतियों तथा योजनाओं को धरातल पर लागू करने एवं विकास तथा कल्याणकारी कार्यों को जनता तक पहुँचाने के लिए लोक सेवकों की विशाल संख्या प्रत्येक राज्य में अनिवार्य रूप से कार्यरत रहती है। इन लोक सेवकों के सर्वोच्च प्रशाासनिक अधिकारी सचिव कहलाते हैं। इन सचिवों के कार्य करने वाले आलय (घर) को सचिवालय कहते हैं। शीर्षस्थ नीति–निर्माण निकाय होने के कारण राज्य प्रशासन में सचिवालय की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

राज्य की राजधानी में मन्त्रियों के कार्यालय सचिवालय में स्थित होते हैं। 'सचिवालय' राज्य में शासन का सर्वोच्च कार्यालय है। राज्य की प्रशासनिक इकाई के वरीयता क्रम में उसे प्रथम स्थान प्राप्त है। सचिवालय शासन का वह संगठन हैं, ''जो प्रशासनिक वस्तुनिष्ठा, निरन्तरता तथा गति'' को सुनिश्चित करता है। वह नियम तथा शासन के कार्यों की प्रक्रिया के सिद्धान्तों का निर्माण करने वाली प्रमुख शक्ति है। यह सर्वविदित तथ्य है कि राज्य शासन के तीन प्रमुख अंग–मन्त्री,सचिव और कार्यपालिका हैं। मन्त्री का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य नीति–निर्धारण

करना है; सचिवालय का कार्य निर्णय पर पहुँचने हेतु सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध कराना तथा निर्णयों का क्रियान्वयन देखना है; तथा कार्यपालिका प्रमुख निर्णयों को क्रियान्वित करता है।

राज्य के शासन का संचालन तथा सचिवालय की कार्य–प्रणाली मूलतः संविधान से अनुप्रेरित होती है तथापि उस राज्य का ऐतिहासिक घटनाक्रम, भौगोलिक परिदृश्य, आर्थिक तथा सामाजिक बाध्यताएँ एवं सत्तारूढ़ राजनीतिक दल की नीतियाँ आदि बातें प्रभाव डालती हैं। राज्य के सचिवालय में कितने विभाग हों, इसका निर्णय सम्बन्धित राज्य की सरकार करती है। राज्यों के सचिवालयों में विभागों की संख्या प्रत्येक राज्य में भिन्न–भिन्न होती है। यह संख्या 11 से लेकर 35 तक है। इसके अनेक अपवाद भी हैं। राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श से विभागों का निर्माण करता है और विभागों द्वारा राज्य शासन का संचालन होता है।

सचिवालय राज्य सरकार का सर्वोच्च कार्यालय होने के कारण शक्तियों का केन्द्र बिन्दु है। राज्य सचिवालय के शीर्ष पर मुख्य सचिव रहता है। यह सचिवालय के कुशल संचालन के लिए उत्तरदायी होता है। सचिव मुख्यमंत्री का शीर्षस्थ परामर्शदाता तथा राज्य सचिवालय का प्रधान होता है। मुख्यमंत्री राज्य सचिवालय का नियंत्रणकर्ता होता है। सचिवालय अनेक प्रशासनिक विभागों में विभाजित होता है और विभागों की पद सोपान श्रृंखला में शीर्ष स्तर पर सचिव तथा उपसचिव, अवर सचिव और सह सचिव होते हैं। इसके अतिरिक्त विशेष सचिव अतिरिक्त सचिव और संयुक्त सचिव आदि पद भी कुछ विभागों में पाये जाते हैं।

सचिवालय के अधिकारी समयबद्ध पद्धति के अनुसार एक निश्चित अवधि के लिए नियुक्त किये जाते हैं केवल मुख्य सचिव को छोड़कर। इन अधिकारियों का चयन क्षेत्र में से किया जाता है तथा सचिवालय की अवधि पूर्ण कर ये वापस क्षेत्र में पहुंच जाते हैं। सचिवालय के सचिवों और पदाधिकारियों की नियुक्ति प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा नहीं बल्कि पदोन्नति द्वारा की जाती है। सचिव की नियुक्ति सम्बन्धित मंत्री के अनौपचारिक सलाह पर मुख्यमंत्री द्वारा की जाती है।

सचिवालय के विभागों की संख्या के सम्बन्ध में राज्यों में विभिन्नता पायी जाती है। समस्त विभागीय प्रमुख प्रशासनिक कार्यालय राज्य सचिवालय होता है। यह राज्य की राजधानी में स्थित होता है।

राज्य सचिवालय के विभिन्न स्तरों के पदाधिकारी अपने पद की महत्ता के अनुसार कार्य सम्पन्न करते हैं। सचिव सम्पूर्ण विभाग और अधीन्स्थ स्टाफ पर नियन्त्रण रखता है, उपसचिव उसकी सहायता करते है तथा अवर सचिव द्वारा देखा जाता है कि प्रस्तुत मामलों में सम्बन्धित सभी तथ्य संलग्न किये गये है अथवा नहीं। अनुभाग का अधीक्षक यह व्यवस्था करता है कि अनुभाग में आने वाले सभी कागज–पत्रों पर उचित कार्रवाई की जाये।

सचिवालय का आन्तरिक संगठनः– सचिवालय अनेक प्रशासनिक विभागों में विभाजित है। सचिवालय के विभागों करी संख्या एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होती है। सामान्यतः सचिव एक विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है परन्तु उसके अधीन एक विभाग के एक से अधिक अध्यक्ष हो सकते हैं। सचिवालय विभाग की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती हैः ''यह एक संगठनात्मक इकाई है जिसमें शासन का एक सचिव तथा उसके प्रशासनिक नियन्त्रण में राज्य सचिवालय का वह भाग होता है जिसे निर्धारित कर्तव्य–निष्पादन का उत्तरदायित्व इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए नियम बनाकर सौंपा गया हो।'' सचिवालय विभाग में अधिकारी तथा कार्यालयीय कर्मचारी होते हैं। अधिकारियों में सचिव, अतिरिक्त सचिव, विशेष सचिव, उपसचिव, अवर सचिव, विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी (यदि कोई हो) आते हैं। कार्यालयीय स्टाफ में अवर सचिव से नीचे के कर्मचारी सम्मिलित हैं। आमतौर पर यह सचिवालय में जीवनपर्यन्त पदस्थ रहने के कारण सचिवालय अधिकारी कहलाते हैं। कार्यालय में सेक्शन अधिकारी, सहायक, उच्च श्रेणी लिपिक, निम्न श्रेणी लिपिक, आशुलिपिक–टाइपिस्ट तथा टाइपिस्ट आते हैं। इनके अधीन चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी होते हैं जो अधिकतर शारीरिक श्रम या अन्य छोटे–मोटे कार्य करते हैं। वर्गीकरण श्रेणियाँ और इन कर्मचारियों की संख्या एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होती है। सचिवालय विभाग अनुभाग में, अनुभाग शाखाओं में, तथा शाखा सेक्शन में विभक्त होते हैं।

राज्य सचिवालय के कार्यः– राज्य के प्रशासन में सचिवालय एक सर्वोच्च कार्यालय है वह अनेक कार्यों को सम्पादित करता है निति निर्धारण में सचिवालय की एक आवश्यक और महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस कारण उसे सतत् कार्य क्षेत्र विस्तार तथा कार्यों एवं शक्तियों के केन्द्रीयकरण में निरन्तर सक्रिय रहना होता है। साधारणतः राज्य सचिवालय निम्नलिखित कार्य करता है।

1. **नीति निर्माण सम्बन्धी कार्य**– मंत्रियों सहित सचिवालय के सभी अधिकारी राज्य शासन और प्रशासन को

चलाने के लिए नीतियों का निरूपण करते हैं। सभी पक्षों एवं विषयों के विविध आयामों पर विचार करने के बाद उस मामले में अन्तिम रूप से नीतिगत निर्णय लेने का कार्य सचिवालय ही करता है। सचिवालय निर्धारित नीतियों को सही रूप में कार्यालयों को सम्प्रेषित करता है।

2. **समन्वयात्मक कार्य**– राज्य स्तर पर सचिवालय राज्य प्रशासन की एक समन्वयकारी संस्था है। राज्य सरकार का मुख्य सचिव विभिन्न सचिव समितियों (Committees of Secretaries) का अध्यक्ष होने के कारण विभागों में समन्वय स्थापित करने में पर्याप्त रूप से प्रभावी रहता है।

3. **परामर्शदात्री कार्य**– राज्य सचिवालय मे कार्यरत सभी शासन सचिव अपने–अपने मन्त्रियों के लिए प्रमुख परामर्शदाता हौते है। मुख्य सचिव मुख्यमन्त्री का प्रमुख परामर्शदाता और निकटतम सहयोगी होता है। इसी तरह अन्य शासन सचिव भी शासकीय मामलों में सभी आवश्यक सूचनाओं एवं तथ्यों के प्रकाश में मन्त्रियों एवं मुख्यमन्त्री को यदि वे चाहे तो उपयुक्त परामर्श उपलब्ध कराते हैं। इस परामर्श से नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण मदद मिलती है।

4. **मन्त्रिमण्डल से सम्बन्धित कार्य**– मन्त्रिमण्डल के समक्ष आने वाले सभी विषयों के सम्बन्ध में सचिवालय को मन्त्रिमण्डल की सहायता तथा आवश्यक कार्यवाही करनी पड़ती है। इसके मत्रिमण्डल से सम्बन्धित कार्य निम्न हैं, जिनमें सचिवालय मन्त्रिमण्डल को विशिष्ट परामर्श प्रदान करता है– (i) व्यवस्थापन सम्बन्धी मामले, जिनमें अध्यादेश जारी करना भी सम्मिलित है; (ii) राज्यपाल द्वारा समय–समय पर विधानसभा में दिये जाने वाने अभिभाषणों तथा सन्देशों कां तैयार करना है; (iii) विधानसभा के अधिवेशनों को आरम्भ करने, स्थगित करने तथा भंग करने एवं विधानसभा को ही भंग करने सम्बन्धी प्रस्तावों पर विचार करना; (iv) किन्हीं विशेष घटनाओं पर सार्वजनिक समितियों के गठन तथा इन समितियों द्वारा किये जाने वाले प्रतिवेदनों पर कार्यवाही किये जाने सम्बन्धी कार्य; (v) सरकार के समक्ष वित्तीय साधनों से सम्बन्धित कठिनाइयाँ को दूर करने सम्बन्धी सुझाव; (vi) विभिन्न मन्त्रियों द्वारा निर्णय हेतु प्रस्तुत प्रस्तावों अथवा निर्देशों को प्राप्त करने सम्बन्धी आवेदनों पर कार्यवाही; (vii) मन्त्रिमण्डलों द्वारा लिये गये पूर्व–निर्णयों को परिवर्तित अथवा संश्लेषित करने हेतु प्रस्ताव; (viii) मन्त्रियों के पारस्परिक विवादों कों सुलझाने सम्बन्धी प्रस्ताव; (ix) किसी मन्त्री अथवा प्रशासक के बीच उठने वाले विवाद; (x) वे सभी मामले, जो राज्यपाल अथवा मुख्यमन्त्री, मन्त्रिमण्डल के समक्ष विचार–विमर्श हेतु प्रस्तुत करना चाहें; (xi) सरकार द्वारा चलाये गये किसी अभियोग को वापस लेने सम्बन्धी प्रस्ताव।

5. **सचिवीय सहायता देना**– राज्य सचिवालय द्वारा राज्य मंत्रिमण्डल तथा उसकी विभिन्न समितियों को उनके नित्य प्रति के कार्यों के सम्बन्धित सभी विषयों पर सचिवीय सहायता प्रदान करने उनकी बैठकों की कार्य सूची बनाने तथा उनमें की गयी कार्यवाहियों का आलेखन आदि करने के लिए उत्तरदायी है।

6. **प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करना**– सचिवालय ही वह नाभि केन्द्र है जहाँ से राज्य के प्रशासन तन्त्र को प्रशासनिक नेतृत्व की क्षमता पर सम्पूर्ण राज्य प्रशासन की कुशलता निर्भर करती है। सभी शासकीय विभागों के शीर्षस्थ अधिकारी–शासन सचिव भी सचिवालय के अभिन्न अंग होते हैं और मन्त्री के प्रमुख परामर्शदाता होने के नाते वे विभाग की नीतियों को अन्तिम रूप देने में प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करते हैं। विभाग के अध्यक्ष एवं अधीनस्थ अधिकारियों को जब कभी भी नीतियों के निष्पादन में कोई कठिनाई अनुभव होती है, दिशा–निर्देश और मार्गदर्शन के लिए वे सचिवालय के अधिकारियों की ओर ही देखते हैं।

7. **वित्तीय तथा बजट सम्बन्धी कार्य**– राज्य की आर्थिक एवं वित्तीय दशा को सुदृढ़ बनाये रखने का अधिकार भी सचिवालय का ही है। सभी प्रशासनिक विभाग अपना बजट बनाकर वित्त विभाग को भेजते है और वित्त विभाग राज्य के व्यापक वित्तीय हित में समन्वय एवं सन्तुलन स्थापित करते हुए राज्य के बजट को अन्तिम रूप देता है। बजट निर्माण के अनुसार खर्च की प्रगकत का मूल्यांकन करने का कार्य सचिवालय द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

8. **प्रमुख सूचना केन्द्र**– सचिवालय विभिन्न सरकारी संस्थाओं से सम्बन्धित आवश्यक सूचनायें मंत्रिमण्डल तथा उसकी विभिन्न समितियों एवं राज्यपाल को प्रेषित करता रहता है। प्रमुख विषयों पर मंत्रिमण्डल द्वारा लिये गये निर्णयों को यह मासिक प्रतिवेदन के रूप में तैयार करता है और विभिन्न विभागों एवं संस्थाओं को प्रेषित करता रहता है।

9. **सांख्यिकीय प्रशासन देखना**– राज्य सरकार की सांख्यिकी नीति बनाने तथा उसे निष्पादित करने एवं विभिन्न सांख्यिकीय संस्थाओं के मध्य समन्वय बनाये रखने की दृष्टि से सचिवालय की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है।

10. **कार्मिक प्रबन्धन सम्बन्धी कार्य**–राज्य की लोक सेवा की भर्ती, नियुक्ति, वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन, सेवा शर्तें, अनुशासनात्मक कार्यवाहियों, आदि के बारे में नीति और नियमों का निर्धारण करता है। यह सर्वविदित है कि राज्य कि सभी प्रमुख प्रशासनिक पदों पर नियुक्तियों, पदोन्नतियों एवं स्थानान्तरण के मामले राज्य सचिवालय में सरकार द्वारा लिये जाते हैं।

सचिव– सचिव विभाग का प्रशासनिक प्रमुख ही नहीं अपितु मन्त्री का प्रशासनिक एवं नीति विषयक परामर्शदाता भी है। कार्य–नियमानुसार सचिव शासन के कार्य–नियमों के प्रतिपालन के लिए व्यक्तिशः उत्तरदायी है। वह अपने विभाग की सभी गतिविधियों के लिए उत्तरदायी होता है। वह शासन के सभी कार्यक्षेत्रों में अपने विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। वह प्रशासन के अन्य विभागों को जोड़ने वाली कड़ी है। विभाग के कार्यों के सम्बन्ध में सामान्य तथा विशिष्ट निर्देश देना उसका विशेषाधिकार है। वह अधिकारियों तथा स्टाफ के बीच कार्य– विभाजन करता है। संक्षेप में, वह विभाग के संगठन तथा कुशलता के लिए उत्तरदायी है। सचिव मन्त्री को नीति विषयक परामर्श प्रदान करता है। सचिव स्टाफ अभिकरण का प्रमुख है।

अतिरिक्त सचिव विभाग के अन्तर्गत सौंपे गये कार्य निष्पादन के लिए औपचारिक ढंग से सचिव के समान ही कार्य करता है वह उस विषय का यथार्थ में प्रमुख है अतः मंत्री से सीधा सम्पर्क स्थापित करता है। उपसचिव सचिव के अधीन तथा सचिव के लिए कार्य करता है उसे अनेकानेक प्रकरणों को अपने स्तर पर निपटाने की शक्ति प्राप्त होती है। महत्वपूर्ण तथा सामान्य नीति विषयक प्रकरण वह सचिव के समक्ष प्रस्तुत करता है।

अवर सचिव निर्णय नहीं लेता विभाग के प्रासंगिक प्रकरण सचिव के समक्ष प्रस्तुत करना उसका कर्तव्य है। समस्त पत्राचार पर वह कार्यवाही आरम्भ करता है वह प्रपत्रों की जांच करना है तथा संकेतक व प्रलेख तैयार करता है वह सचिव तथा कार्यालय प्रबन्धक की मिली जुली अभिव्यक्ति है। कुछ विभागों में विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी ओ0एस0डी0 होते हैं यह अस्थायी पद है विभाग में जब किसी महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने की आवश्यकता होती है और यह अनुभव किया जाता है कि किसी व्यक्ति को उत्तरदायित्व सौंप कर ही उसे अच्छी तरह पूरा किया जा सकता है तो एक विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी नियुक्त किया जाता है।

मुख्य सचिव– प्रत्येक राज्य में सचिवालय का प्रमुख मुख्य सचिव होता है। वह सदैव सामान्य प्रशासन विभाग का प्रभारी होता है, जो मुख्यमन्त्री के कार्यक्षेत्र का अंश है। उसका नियन्त्रण सचिवालय के अन्य सभी विभागों तक व्यापक है। उसे बराबर वालों में प्रथम कहना उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि वह वास्तव में सचिवों का प्रमुख हैं। अतः उसे सचिवालय का मुखिया कहना ही उचित है। सामान्यतः वह राज्य की लोक–सेवाओं का प्रमुख हैं। अधिकारियों के स्तर पर वह अन्तर्विभागीय समन्वय केन्द्रबिन्दु का कार्य करता है। अपने अनुभव और पदावधि के आधार पर वह इतने बड़े संगठन में अधिकारियों की कठिनाइयाँ और मतभेद दर करता है तथा अन्य अधिकारियों का सामान्य मार्गदर्शन करता है। इस प्रकार वह राज्य की प्रशासन–व्यवस्था का नेतृत्व करना है। वह केन्द्र शासन या अन्य राज्य–शासनों तथा अपने राज्य–शासन के बीच संचार की मुख्य कड़ी है। राज्य–शासन में मुख्य सचिव एक ऐसा पदाधिकारी होता है जिसको केन्द्र–शासन में कोई समतुल्य नहीं है। वास्तव में राज्य–प्रशासन में उसकी भूमिका केन्द्र–शासन के अनेक वरिष्ठ अधिकारियों, मन्त्रिमण्डलीय सचिव, वित्त–सचिव और गृह–सचिव आदि जेसी होती है।

कार्य– मुख्य सचिव निम्नलिखित कार्य करता है :–

1. वह मुख्यमन्त्री का प्रमुख परामर्शदाता है।
2. वह सम्पूर्ण सचिवालय का सामान्य निरीक्षण एवं नियन्त्रण करता है।
3. वह अन्य सचिवों के क्षेत्राधिकार से बाहर प्रकरणों की देखभाल करता है।
4. सभी सचिवों का प्रमुख होने के आधार पर वह अनेकानेक समितियों की अध्यक्षता करता है तथा अन्य अनेक समितियों का सदस्य होता है।
5. राज्य जिस क्षेत्रीय परिषद का सदस्य है, वह क्रमानुसार उसका सचिव होता है।
6. मन्त्रियों के स्टाफ पर वह नियन्त्रण रखता है।

7. वह अपने शासन और केन्द्र तथा अन्य राज्यों के शासन के मध्य मुख्य संचार–सूत्र है।
8. वह भारत सरकार से समस्त महत्वपूर्ण एवं गोपनीय सूचनाएँ प्राप्त करता है और उन्हें मुख्यमंत्री के समक्ष प्रस्तुत करता है।
9. वह आधिकारिक संयन्त्र का प्रमुख, मन्त्रिपरिषद् का परामर्शदाता, नागरिक सेवाओं का प्रमुख, उनका विश्वसनीय परामर्शदाता है तथा उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करता है। इस प्रकार राज्य–प्रशासन में मुख्य सचिव महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करता है।
10. राज्य में शान्ति व व्यवस्था बनाये रखने में आवश्यक कार्यवाही करता है।
11. वह लोक सेवाओं का अध्यक्ष होता है और सरकारी सेवीवर्ग की नियुक्ति, स्थानान्तरण तथा पद विमुक्ति आदि की शक्तियाँ उसमें निहित हैं।
12. वह सचिवालय भवनों व उनके कक्षों पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखता है।
13. संकटकाल के समय वह राज्य में 'नर्व सिस्टम' की भाँति कार्य करता है।
14. राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने की स्थिति में वह सम्पूर्ण राज्य प्रशासन के संचालन के लिए उत्तरदायी होता है।

मुख्य सचिव की भूमिका और स्थिति– मुख्य सचिव का पद राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में सर्वाधिक महत्व का पद है। मुख्य सचिव एक ऐसा स्त्रोत है जिसके माध्यम से सरकारी आदेश उसके अधिकारियों तक पहुँचते हैं। राज्य प्रशासन में उसकी भूमिका स्वयं उसके नेतृत्व, गुणों एवं कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। आजकल प्रायः देखने में आता है कि राजनीतिक प्रभाव मुख्य सचिव की नियुक्ति में अहम् भूमिका निभाता है। इसलिए सरकार के परिवर्तन के साथ मुख्य सचिव में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। यह परम्परा घातक है।

मन्त्री एवं सचिव के सम्बन्ध– सच कहा जाय तो सचिवालय एक ऊपरी कार्यालय है जो नीति–निर्माण और विधायिका सम्बन्धों, स्मृति एवं कार्य–निष्पादन, सदन के निर्णय से पहले की व्यवस्था और कार्यपालक सामान्य निरीक्षण के लिए स्थित होता है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के समय से ही राज्य ने अपने आर्थिक स्त्रोतों के विकास तथा निर्बल, निर्धन एवं निम्न वर्गों के सामाजिक व आर्थिक न्याय का महत्वपूर्ण कार्य अपने हाथ में ले रखा है। इसके फलस्वरूप सचिवालय के कार्यों में धीरे–धीरे पर्याप्त एवं महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। यह कार्य उत्तरोत्तर जटिल एवं तकनीकी हो रहा है।

मन्त्री तथा लोक–सेवकों में सम्बन्ध– उत्तरायित्व–निर्वाह एवं कर्तव्य–निष्पादन में मतभेद और असन्तोष स्वाभाविक है। कभी लोक–सेवक किसी कार्य को उस रूप में सम्पन्न नहीं करता जिस प्रकार उसे कराना चाहता है। कभी लोक–सेवक द्वारा प्रक्रिया–नियम का औचित्यपूर्ण प्रतिपालन एवं नियमबद्ध औपचारिकताएँ मन्त्री को निरर्थक प्रतीत होती हैं और मन्त्री द्वारा लोक–सेवक के कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप का आरोप लगाया जाता है। दोनों के ही द्वारा इस परामर्श का पालन अच्छा रहेगा ''मन्त्री एवं लोक–सेवक के परस्पर सम्बन्ध जन–हित तथा विभाग की कुशलता के लिए कार्यरत साथियों की टीम के समाने होने चाहिए जो एक साथ मिलकर भागीदार हैं व सहयोग करते हैं। मन्त्री तानाशाह नहीं होना चाहिए जो बिना सुने, वैकल्पिक तर्कों पर विचार किये बिना ही आज्ञा देता रहे। दूसरी ओर, लोक–सेवक भी मन्त्री को शून्य न माने। यहाँ जीवन और शक्तिशाली भागीदारी हो, विरोधी विचारों और मतों पर पर्याप्त विचार किया जाये। परस्पर सम्मानजनक सम्बन्ध होने चाहिए यद्यपि मन्त्री का निर्णय अन्तिम है, उससे निष्ठापूर्वक सहयोग करना चाहिए। वह कुशल एवं प्रभावशाली सेवा चाहता है।''

11.3 सारांश

सचिवालय राज्य में शासन का सर्वोच्च कार्यालय है नीति निर्धारण में सचिवालय की आवश्यक तथा महत्वपूर्ण भूमिका के परिणामस्वरूप सतत कार्य क्षेत्र विस्तार तथा कार्यों एवं शक्तियों का सचिवालय में केन्द्रीयकरण हो रहा है। प्रत्येक शासन में मंत्री या राजनीतिक प्रमुख, सचिव या प्रशासन प्रमुख और कार्यपालिका प्रमुख आदि आते हैं। ये तीन घटक ही निर्णायक हैं। कुशल प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि तीनों घटक के कार्य पृथक से परिभाषित होने चाहिए तथा प्रत्येक घटक को अन्य के साथ निकटतम सम्पर्क स्थापित कर कार्य निष्पादन करना चाहिए। राज्य प्रशासन में सुधार के लिए गठित समितियों और आयोगो ने समय–समय पर विभिन्न सुझावों के द्वारा

राज्य सचिवालय की भूमिका को सुधारने तथा छोटे–छोटे संगठनात्मक आमूल परिवर्तन और प्रक्रियात्मक परिवर्तन के सुझाव दिए हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि सचिवालय तथा कार्यपालिका विभाग के कार्यों में स्पष्ट विभाजन रेखा होनी चाहिए। सचिवालय को मुख्यतः नीति विषयक कार्यों तक ही अपने आपको सीमित रखना चाहिए और नीति क्रियान्वयन क्षेत्रीय इकाईयों को सौंप देना चाहिए उसे केवल निरीक्षण एवं समन्वय की भूमिका सम्पन्न करनी चाहिए।

11.4 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. **भारतीय लोक प्रशासनः**– शालिनी वाधवा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
2. **भारतीय प्रशासनः**– प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन दिल्ली।
3. **भारतीय प्रशासनः**– डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
4. **आधुनिक लोक प्रशासनः**– आर0के0 दूबे लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

11.5 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. राज्य सचिवालय की स्थापना कब हुई?
   - (a) 1949 (b) 1990
   - (c) 1958 (d) 1962
2. राज्य सचिवालय का प्रशासनिक अध्यक्ष कौन होता है।
   - (a) मुख्यमंत्री (b) प्रधानमंत्री
   - (c) मुख्य सचिव (d) राज्यपाल
3. मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त होने वाले अधिकारी
   - (a) राज्यपाल (b) मुख्यमंत्री
   - (c) गृहमन्त्री (d) प्रधानमन्त्री

लघुउत्तरीय प्रश्न :–

1. राज्य सचिवालय का संगठन कैसे होता है?
2. राज्य सचिवालय क्या होता है?
3. एक सचिवालय की विधायी भूमिका क्या है?
4. मुख्य सचिव के मुख्य कार्य क्या होते है?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न :–

1. राज्य सचिवालय के कार्यों की विस्तृत व्याख्या करें।
2. सचिवालय एवं कार्यकारिणी विभागों के बीच प्रमुख अंतर स्पष्ट कीजिए।

इकाई–12 निदेशालय / प्रादेशिक प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्‌देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 निदेशालय : अर्थ एवं संगठन

12.3 निदेशालय एवं प्रादेशिक प्रशासन

12.4 प्रादेशिक प्रशासन में निदेशालय एवं सचिवालय के बीच संबंध

12.5 सारांश

12.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.7 बहु विकल्पीय प्रश्न

12.0 उद्‌देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप

- निदेशालय एवं प्रादेशिक प्रशासन की संरचना को समझ सकेंगे।
- राज्य में प्रशासनिक स्तर पर निदेशालय एवं सचिवालय के बीच संबंध को समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

भारतीय संसदीय प्रणाली में मंत्रिमंडल या मंत्रिपरिषद जो कि वास्तविक कार्यपालिका भी होती है। इसके कार्यों को संपन्न करने के लिए निदेशालय की स्थापना की जाती है जिसमें कि प्रशासनिक कार्यों को संपादित किया जाता है। कार्यक्रम और नीतियां बनाने के लिए मंत्रिपरिषद की सहायता सचिवालय करता है और सचिवालय की सहायता निदेशालय करता है। निदेशालय निर्देशकों के कार्य को करने का स्थान होता है इसमें अधिकारी विशेषज्ञ होते हैं। निदेशालय राज्य की राजधानी या किसी प्रमुख नगर में होता है। निदेशालय किसी मंत्रालय के अंदर विशिष्ट कार्यक्षेत्र के लिए उत्तरदायी होता है या नीतियों के क्रियान्वयन और देखने के लिए जिम्मेदार होता है। निदेशालय के प्रमुख कार्य विभागीय बजट तैयार करना अपने संबंधित कार्यालय को तकनीकी जानकारी देना अधिकारियों की नियुक्ति संबंधी मामले पदोन्नति स्थानांतरण संबंधी मामले लोक सेवा आयोग को सुझाव देना आदि।

12.2 निदेशालय : अर्थ एवं संगठन

निदेशालय नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्राथमिक रूप से जिम्मेदार संस्था है यद्यपि की इसमें प्रमुखों को अलग–अलग नाम से जाना जाता है परंतु साधारणता उसे विभागध्यक्ष के नाम से संबोधित किया जाता है निदेशालय की अध्यक्षता करने वाला विभागध्यक्ष तकनीकी रूप से एक विशेषज्ञ व्यक्ति होता है।

इस प्रकार निदेशालय निदेशकों का घर या कार्य करने का वह विशेष स्थान होता है जिसका मुख्यालय राज्य की राजधानी या किसी प्रमुख नगर में होता है क्षेत्रीय तथा जिला कार्यालय भी होते हैं जहां संयुक्त,अतिरिक्त और उपनिदेशक पद स्थापित होते हैं। निदेशालय के अधिकारी विशेषज्ञ प्रकार के होते हैं जिनका विशेष प्रकार की गतिविधियों को संचालित करने का दायित्व होता है यद्यपि की निदेशालयों के प्रमुख अधिकारियों को निदेशक / संचालक कहते हैं परंतु कहीं कहीं निदेशालय के प्रमुख अधिकारियों को आयुक्त, नियंत्रक ,मुख्य अभियंता, महानिदेशक आदि नाम से भी जाना जाता है निदेशालयों के निदेशक ही विभागाध्यक्ष के नाम से भी जाने जाते हैं। राज्य प्रशासन में सचिवालय निदेशालय का नियंत्रक विभाग होता है जहां से उसे निर्देश प्राप्त होते हैं क्षेत्रीय स्तर पर कार्यरत समस्त स्टाफ या कर्मचारी वर्ग निदेशालय के अधीन ही होता है।

12.3 निदेशालय एवं प्रादेशिक प्रशासन

राज्य शासन में प्रमुख तौर पर तीन स्तर देखे जा सकते हैं मंत्री या राजनीतिक प्रमुख, सचिव या प्रशासनिक प्रमुख एवं कार्यकारी प्रमुख इसी आधार पर राज्य सरकार के विभागों में दो पृथक संरचनाएं की जाती हैं। सचिवालय शाखा एवं कार्यकारी विभाग शाखा वस्तुत जब हम सचिवालय शाखा की बात करते हैं तो इसका सीधा तात्पर्य शासन अथवा मंत्रालय से होता है वहीं दूसरी ओर निदेशालय या कार्यकारी विभाग से तात्पर्य सरकार के नियंत्रण में काम करने वाली एक ऐसी संस्था से है जो सचिवालय द्वारा प्राप्त निर्देशों के आधार पर नीतियों और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने की भूमिका निभाती है।

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में सचिवालय और निदेशालय दो महत्वपूर्ण प्रशासनिक इकाइयाँ हैं, जो नीतियों के निर्माण एवं कार्यान्वयन की प्रक्रिया को अंजाम देती हैं। सचिवालय नीति–निर्माण और समन्वय का केंद्र होता है, जबकि निदेशालय नीति के क्रियान्वयन की एजेंसी के रूप में कार्य करता है।

इस तरह कहा जा सकता है कि जैसे कि मंत्रिपरिषद को सहायता देने के लिए सचिवालय कार्य करता है उसी प्रकार सचिवालय को सहायता देने के लिए निदेशालय कार्य करता है। सचिवालय एक सर्वोच्च नीति–निर्माता निकाय है। इसके तहत कतिपय संस्थाओं का एक जाल होता है जो सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्राथमिक रूप से जिम्मेदार भी होता है। इन संस्थाओं को कार्यकारी संस्थाएं कहा जाता है। यह कार्यकारी संस्थाएं अपने नियंत्रण के तहत क्षेत्रीय संस्थाओं के माध्यम से सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी होती है।

लोक नीतियों को लागू करने तथा जनता को सेवाएं उपलब्ध कराने का कार्य इन्हीं कार्यकारी विभागों के द्वारा संपन्न किया जाता है। इन कार्यकारी विभागों में विशेषज्ञ अधिकारी होते हैं जिन्हें निर्देशक या संचालक कहा जाता है। सचिवालय के बहुत सारे विभाग ऐसे हैं जैसे वित्त शिक्षा ,कृषि ,स्वास्थ्य तथा गृह जिनका कार्य क्षेत्र अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक है। इन कार्यों को केवल सचिवालय के द्वारा संपन्न किया जाना संभव नहीं होता है इसलिए इन विभागों के कार्यों को अनेक कार्यकारी विभाग और संस्थाओं के द्वारा पूर्ण कराया जाता है। इसलिए इन कार्यकारी विभागों की एक महती भूमिका होती है। यह निदेशालय लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पूर्णता में भी एक महती भूमिका निभाते हैं क्योंकि एक आम जनता तथा क्षेत्रीय कर्मचारियों की पहुंच सचिवालय तक ना हो करके इन निदेशालय तथा क्षेत्रीय शाखाओं में सरलता से हो जाती है।

शासन के प्रारंभिक एवं नीति निर्माण संबंधित क्रियाकलापों का कार्यपालक निर्देशन एवं क्षेत्रीय इकाइयों में विकेंद्रीकरण होना चाहिए। सचिवालय के अधिकतर महत्वपूर्ण कार्यों के निष्पादन के लिए आकार एवं शक्ति की दृष्टि से विभिन्न कार्यपालक विभाग होते हैं प्रशासन विभाग द्वारा निश्चित नीति के क्रियान्वयन हेतु कार्यपालक निर्देशन के लिए वह उत्तरदायी है या कार्यपालक विभाग तकनीकी आवश्यकताओं के लिए सचिवालयों को मार्गदर्शन देते हैं उनके अधीन क्षेत्रीय इकाइयां होती हैं जो नीतियों एवं क्रियान्वयन के विस्तृत अनुपालन के लिए उत्तरदायी होती है विभागाध्यक्षों और उनके अधीनस्थ कार्यालय में प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियां निहित होती हैं और यह मुख्यालय पर राज्य शासन की आज्ञाओं के लिए प्रेषित किए जाते हैं शासन के समक्ष प्रस्तुत प्रकरणों पर सचिव यदि आवश्यक हो तो प्रभारी मंत्री की स्वीकृति से आदेश देता है आमतौर पर सचिवालय के प्रत्येक प्रशासनिक विभाग के क्षेत्र में समक्ष कार्यपालक विभाग होता है।

विभाग अपने कार्य के कुशल एवं गतिशील निष्पादन के लिए अनुभागों (सेक्शन) में विभक्त होते हैं। इन (सेक्शन) अनुभाग में अधीक्षक, सहायक उच्च तथा निम्न श्रेणी लिपिक टाइपिस्ट ,अभिलेख संग्रह लिपिक तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी आदि होते हैं। सचिवालय के लिपिक स्टाफ में अधीक्षक उत्तरदायित्व का पद है। वह कदाचित ही कभी सीधी भर्ती से नियुक्त होता है परंतु वह सचिवालय के उच्च श्रेणी लिपिक के ग्रेड प्रथम में से योग्यता श्रेष्ठता के आधार पर पदोन्नति होता है। वह एक परिपक्व तथा पर्याप्त अनुभवी व्यक्ति होता है। यथार्थ में वह विभाग में प्रमुख व्यक्ति है । वह अपने स्टाफ कार्मिकों में कुशलता एवं सामंजस्य बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। साथ ही सचिवालय में स्थापना अधिकारी, लेखा अधिकारी रजिस्टर तथा अभिलेख संग्रह चार अन्य प्रमुख अधिकारी होते हैं।

12.4 प्रादेशिक प्रशासन में निदेशालय एवं सचिवालय के बीच संबंध

एक कार्यपालक एजेंसी को पहचानने के लिए सामान्य तौर पर निदेशालय का नाम दिया जाता है। अधिकतर मामलों में कार्यपालक एजेंसियों के अध्यक्षों को निदेशक के रूप में जाना जाता है जैसे— शिक्षा निदेशक, परिवहन निदेशक, कृषि निदेशक, समाज कल्याण निदेशक पशुपालन निदेशक आदि। हालांकि उनके लिए अन्य नाम का भी उपयोग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर जेल विभाग के अध्यक्ष को जेल महा—निरीक्षक, वन विभाग के अध्यक्ष को मुख्य वन संरक्षक, पुलिस विभाग के कार्यपालक अध्यक्ष को पुलिस महानिरीक्षक आदि कहा जाता है।

सचिवालय लोक प्रशासन व्यवस्था में विकसित एक आवश्यक संस्था है। केन्द्र सरकार हो या राज्य स्तरीय सरकार मंत्री परिषद के सदस्यों को प्रशासनिक सहयोग और परामर्श देने के लिए प्रशासनिक अधिकारी नियमित रूप से कार्य करते है। उनके सहयोग से ही सरकार द्वारा जो नीति निर्माण का कार्य किया जाता है इन प्रशासनिक अधिकारियों के संगठित और नियमित रूप से कार्य करने वाले निकाय को ही सचिवालय कहा जाता है।

सचिवालय और निदेशालय प्रशासन के दो महत्वपूर्ण घटक होते हैं, जिनके कार्य और भूमिकाएं अलग—अलग होने के बावजूद परस्पर पूरक होती हैं। सचिवालय का मुख्य कार्य नीति निर्माण, प्रशासनिक नियंत्रण, बजट निर्धारण, और योजनाओं की रूपरेखा तैयार करना होता है। यह मुख्यतः एक प्रशासनिक—राजनीतिक निकाय होता है, जहाँ पर सचिव, संयुक्त सचिव, अवर सचिव आदि अधिकारी कार्य करते हैं। यह राजनीतिक नेतृत्व को प्रशासनिक सलाह देने का कार्य करता है तथा समग्र नीति प्रक्रिया को संचालित करता है। वहीं दूसरी ओर, निदेशालय का कार्य सचिवालय द्वारा तैयार की गई नीतियों और योजनाओं को व्यवहारिक रूप से लागू करना होता है। यह एक तकनीकी और कार्यात्मक निकाय होता है जिसमें निदेशक, संयुक्त निदेशक, उप निदेशक जैसे विशेषज्ञ और क्षेत्रीय अधिकारी कार्य करते हैं। ये अधिकारी योजनाओं को धरातल पर लागू करते हैं, उनका निरीक्षण करते हैं, और समय—समय पर रिपोर्ट तैयार करके सचिवालय को भेजते हैं।

सचिवालय और निदेशालय के बीच संबंध नियंत्रण, निर्देश और समन्वय पर आधारित होता है। सचिवालय, निदेशालय को नीतिगत दिशा—निर्देश देता है और उसके कार्यों की निगरानी करता है, जबकि निदेशालय सचिवालय के मार्गदर्शन में कार्य करता है और उसे अपने क्रियान्वयन की स्थिति से अवगत कराता है। दोनों के बीच निरंतर संवाद, पारदर्शिता और सहयोग नीतियों की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। इस प्रकार सचिवालय और निदेशालय का संबंध एक नीति—निर्माता और नीति—कार्यान्वयनकर्ता के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ सचिवालय योजनाओं को "क्या और क्यों" के स्तर पर परिभाषित करता है, और निदेशालय उन्हें "कैसे" के रूप में लागू करता है। इस परस्पर सहयोग और उत्तरदायित्व के बिना प्रशासनिक तंत्र की प्रभावशीलता संभव नहीं हो सकती।

12.5 सारांश

सचिवालय और निदेशालय भारतीय प्रशासन के दो पूरक स्तंभ हैं। एक के बिना दूसरे की कार्यप्रणाली अधूरी है। सचिवालय नीतियाँ बनाता है, लेकिन निदेशालय उन्हें धरातल पर उतारता है। इसलिए इन दोनों के मध्य प्रभावी समन्वय और स्पष्ट भूमिका—निर्धारण प्रशासनिक दक्षता की कुंजी है। निदेशालय मध्यवर्ती स्तर पर प्रशासनिक ढांचा स्थापित करते हैं जो क्षेत्र के कार्यपालकों का पर्यवेक्षक तथा समन्वय करते हैं। इस मध्यवर्ती ढांचे को क्षेत्रीय प्रशासन कहा जाता है। क्योंकि सचिवालय का कार्य केवल नीति निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना है जिसके चलते इस दिन प्रतिदिन के प्रशासन से संबंधित मामलों में उलझने से छुटकारा मिल जाता है।

12.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **भारतीय प्रशासनः**— डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. **भारतीय प्रशासनः**— प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
3. **भारतीय लोक प्रशासनः**— शालिनी वाधवा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
4. **आधुनिक लोक प्रशासनः**— आर0के0 दूबे लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

12.7 बहु विकल्पीय प्रश्न

1. निदेशालय का मुख्य कार्य क्या होता है?
   a) नीतियाँ बनाना
   b) बजट पारित करना
   c) नीतियों का क्रियान्वयन करना
   d) कानून बनाना
2. निम्नलिखित में से कौन निदेशालय में कार्यरत होता है?
   a) सचिव
   b) मंत्री
   c) निदेशक
   d) विधायक
3. प्रादेशिक प्रशासन मुख्यतः किस स्तर पर कार्य करता है?
   a) केंद्र स्तर
   b) राज्य स्तर
   c) जिला एवं तहसील स्तर
   d) अंतर्राष्ट्रीय स्तर
4. सचिवालय और निदेशालय के बीच संबंध किस प्रकार का होता है?
   a) प्रतिद्वंद्वी का
   b) स्वतंत्र का
   c) नियंत्रण और निर्देशन का
   d) राजनैतिक का
5. प्रादेशिक प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
   a) विदेश नीति बनाना
   b) फील्ड स्तर पर प्रशासन सुनिश्चित करना
   c) न्यायिक निर्णय लेना
   d) संवैधानिक संशोधन करना
6. कौन–सा पद प्रादेशिक प्रशासन का हिस्सा नहीं होता है?
   a) जिलाधिकारी
   b) तहसीलदार
   c) उप निदेशक
   d) अवर सचिव

इकाई–13 निदेशालयों और सचिवालयों के बीच संबंध

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 निदेशालय एवं सचिवालय : अर्थ और संगठन

13.3 राज्य प्रशासन में सचिवालय–निदेशालय संबंध

13.4 सारांश

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.6 बहु विकल्पीय प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप

- निदेशालय एवं सचिवालय का अर्थ एवं इसके संगठन को समझ सकेंगे।
- राज्य स्तर पर निदेशालय की आवश्यकता एवं महत्व को समझ सकेंगे।
- राज्य प्रशासन में निदेशालय एवं सचिवालय के संबंधों में तनाव पैदा करने वाले कारकों को समझ सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

अपनी पिछली इकाई में हमने राज्य स्तरीय प्रशासन को समझा एवं निदेशालय की संरचना को जाना। अब इस इकाई के अंतर्गत हम राज्य प्रशासन के अंतर्गत निदेशालय एवं सचिवालय के बीच संबंधों की चर्चा करेंगे। जैसा कि हम सभी जानते है कि सचिवालय एवं निदेशालय सरकारी मशीनरी के दो पहिए हैं। यह दोनों ही अपने सहयोग व संयम समन्वय द्वारा प्रशासन को असली रूप देने का कार्य करते हैं। इनमें से एक संबंध सचिवालय की व्यवहारिक कर प्रणाली से है और दूसरे का संबंध सचिवालय के उसे विस्तार से है जो वर्तमान में उसकी भूमिका कर्मियों की बढ़ती हुई संख्या और प्रशासनिक इकाइयों की बाढ़ से संबंधित है में दोनों ही एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।

13.2 निदेशालय एवं सचिवालय : अर्थ और संगठन

निदेशालय नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्राथमिक रूप से जिम्मेदार संस्था है। यद्यपि इसमें प्रमुखों को अलग–अलग नाम से जाना जाता है परंतु साधारणतया उसे विभागध्यक्ष के नाम से संबोधित किया जाता है। निदेशालय की अध्यक्षता करने वाला विभागध्यक्ष तकनीकी रूप से एक विशेषज्ञ व्यक्ति होता है। भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में सचिवालय और निदेशालय दो महत्वपूर्ण प्रशासनिक इकाइयाँ हैं, जो नीतियों के निर्माण एवं कार्यान्वयन की प्रक्रिया को अंजाम देती हैं। सचिवालय नीति–निर्माण और समन्वय का केंद्र होता है, जबकि निदेशालय नीति के क्रियान्वयन की एजेंसी के रूप में कार्य करता है।

इस प्रकार निदेशालय निदेशकों का घर या कार्य करने का वह विशेष स्थान होता है जिसका मुख्यालय राज्य की राजधानी या किसी प्रमुख नगर में होता है क्षेत्रीय तथा जिला कार्यालय भी होते हैं जहां संयुक्त,अतिरिक्त और उपनिदेशक पद स्थापित होते हैं । निदेशालय के अधिकारी विशेषज्ञ प्रकार के होते हैं जिनका विशेष प्रकार की गतिविधियों को संचालित करने का दायित्व होता है यद्यपि की निदेशालयों के प्रमुख अधिकारियों को निदेशक/संचालक कहते हैं परंतु कहीं कहीं निदेशालय के प्रमुख अधिकारियों को आयुक्त, नियंत्रक ,मुख्य अभियंता,

महानिदेशक आदि नाम से भी जाना जाता है निदेशालयों के निदेशक ही विभागाध्यक्ष के नाम से भी जाने जाते हैं। राज्य प्रशासन में सचिवालय निदेशालय का नियंत्रक विभाग होता है जहां से उसे निर्देश प्राप्त होते हैं। क्षेत्रीय स्तर पर कार्यरत समस्त स्टाफ या कर्मचारी वर्ग निदेशालय के अधीन ही होता है।

13.3 राज्य प्रशासन में सचिवालय–निदेशालय संबंध

निदेशालय राज्य सरकार का कार्यपालक अंग है। यह राज्य सचिवालय द्वारा निर्मित नीतियों को कार्यान्वित करते है। निदेशालय दो भागों में वर्गीकृत है किए जाते हैं– (1) संबंध कार्यालय (2) अधीनस्थ कार्यालय। इस वर्गीकरण से इन दोनों संस्थाओं की नीति क्रियावयन में भूमिका की शैक्षिक समझा आसान बनती है। एक कार्यपालक एजेंसी को पहचानने के लिए सामान्य तौर पर निदेशालय का नाम दिया जाता है। अधिकतर मामलों में कार्यपालक एजेंसियों के अध्यक्षों को निदेशक के रूप में जाना जाता है जैसे– शिक्षा निदेशक, परिवहन निदेशक, कृषि निदेशक, समाज कल्याण निदेशक पशुपालन निदेशक आदि। हालांकि उनके लिए अन्य नाम का भी उपयोग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर जेल विभाग के अध्यक्ष को जेल महा–निरीक्षक, वन विभाग के अध्यक्ष को मुख्य वन संरक्षक, पुलिस विभाग के कार्यपालक अध्यक्ष को पुलिस महानिरीक्षक आदि कहा जाता है।

सचिवालय लोक प्रशासन व्यवस्था में विकसित एक आवश्यक संस्था है। केन्द्र सरकार हो या राज्य स्तरीय सरकार मंत्री परिषद के सदस्यों को प्रशासनिक सहयोग और परामर्श देने के लिए प्रशासनिक अधिकारी नियमित रूप से कार्य करते है। उनके सहयोग से ही सरकार द्वारा जो नीति निर्माण का कार्य किया जाता है इन प्रशासनिक अधिकारियों के संगठित और नियमित रूप से कार्य करने वाले निकाय को ही सचिवालय कहा जाता है।

सचिवालय और निदेशालय प्रशासन के दो महत्वपूर्ण घटक होते हैं, जिनके कार्य और भूमिकाएं अलग–अलग होने के बावजूद परस्पर पूरक होती हैं। सचिवालय का मुख्य कार्य नीति निर्माण, प्रशासनिक नियंत्रण, बजट निर्धारण, और योजनाओं की रूपरेखा तैयार करना होता है। यह मुख्यतः एक प्रशासनिक–राजनीतिक निकाय होता है, जहाँ पर सचिव, संयुक्त सचिव, अवर सचिव आदि अधिकारी कार्य करते हैं। यह राजनीतिक नेतृत्व को प्रशासनिक सलाह देने का कार्य करता है तथा समग्र नीति प्रक्रिया को संचालित करता है।

वहीं दूसरी ओर, निदेशालय का कार्य सचिवालय द्वारा तैयार की गई नीतियों और योजनाओं को व्यवहारिक रूप से लागू करना होता है। यह एक तकनीकी और कार्यात्मक निकाय होता है जिसमें निदेशक, संयुक्त निदेशक, उप निदेशक जैसे विशेषज्ञ और क्षेत्रीय अधिकारी कार्य करते हैं। ये अधिकारी योजनाओं को धरातल पर लागू करते हैं, उनका निरीक्षण करते हैं, और समय–समय पर रिपोर्ट तैयार करके सचिवालय को भेजते हैं।

सचिवालय और निदेशालय के बीच संबंध नियंत्रण, निर्देश और समन्वय पर आधारित होता है। सचिवालय, निदेशालय को नीतिगत दिशा–निर्देश देता है और उसके कार्यों की निगरानी करता है, जबकि निदेशालय सचिवालय के मार्गदर्शन में कार्य करता है और उसे अपने क्रियान्वयन की स्थिति से अवगत कराता है। दोनों के बीच निरंतर संवाद, पारदर्शिता और सहयोग नीतियों की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक होता है।

इस प्रकार सचिवालय और निदेशालय का संबंध एक नीति–निर्माता और नीति–कार्यान्वयनकर्ता के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ सचिवालय योजनाओं को "क्या और क्यों" के स्तर पर परिभाषित करता है, और निदेशालय उन्हें "कैसे" के रूप में लागू करता है। इस परस्पर सहयोग और उत्तरदायित्व के बिना प्रशासनिक तंत्र की प्रभावशीलता संभव नहीं हो सकती।

13.3 सारांश

इस इकाई में हमने निदेशालय एवं सचिवालय के बीच संबंधों के संभावित स्वरूपों में से केवल सबसे महत्वपूर्ण स्वरूप की चर्चा की है। निदेशालय मध्यवर्ती स्तर पर प्रशासनिक ढांचा स्थापित करते हैं जो क्षेत्र के कार्यपालकों का पर्यवेक्षक तथा समन्वय करते हैं। इस मध्यवर्ती ढांचे को क्षेत्रीय प्रशासन कहा जाता है। क्योंकि सचिवालय का कार्य केवल नीति निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना है जिसके चलते इस दिन प्रतिदिन के प्रशासन से संबंधित मामलों में उलझने से छुटकारा मिल जाता है। सभी आलेख वाले सभी निदेशालय में से विशेष होता है जिसे अपने–अपने क्षेत्र में दक्षता प्राप्त होती है। इससे नीति निर्माण प्रतीक्षा में निर्देश के अनुभव का वास लाभ

उठाया जा सकता है।

13.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **भारतीय प्रशासनः**— डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. **भारतीय प्रशासनः**— प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
3. **भारतीय लोक प्रशासनः**— शालिनी वाधवा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
4. **आधुनिक लोक प्रशासनः**— आर0के0 दूबे लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

13.5 बोध प्रश्न

1. उपराज्य स्तरीय स्तर पर निदेशालय क्यों होनी चाहिए?
2. निदेशालय एवं सचिवालय के संबंधों के स्वरूप का परीक्षण कीजिए।

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. निदेशालय का मुख्य कार्य क्या होता है?

   a) नीतियाँ बनाना

   b) बजट पारित करना

   c) नीतियों का क्रियान्वयन करना

   d) कानून बनाना

2. निम्नलिखित में से कौन निदेशालय में कार्यरत होता है?

   a) सचिव

   b) मंत्री

   c) निदेशक

   d) विधायक

3. सचिवालय और निदेशालय के बीच संबंध किस प्रकार का होता है?

   a) प्रतिद्वंद्वी का

   b) स्वतंत्र का

   c) नियंत्रण और निर्देशन का

   d) राजनैतिक का

इकाई–14 राज्य सेवायें एवं लोक सेवा आयोग

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 राज्य सेवायें एवं लोक सेवा आयोग

14.3 सारांश

14.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.5 बोध प्रश्न

14.0 उद्देश्य

- इस पाठ को पढ़ने के बाद आप लोक सेवा आयोग की संरचना तथा उसके कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- लोक सेवा आयोग की स्वतन्त्रता से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों की चर्चा करेंगे।
- हम राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और उनके सदस्यों की नियुक्ति से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

1926 में केन्द्रीय लोक–सेवा आयोग की स्थापना हुई। प्रान्तों में भी इसी प्रकार के आयोग के गठन की अनुशंसा की अपेक्षा की गयी। केन्द्रीय लोक–सेवा आयोग को प्रान्तीय लोक–सेवाओं के लिए भर्ती करने का कार्य सौंपा गया। भारत सरकार, अधिनियम, 1935 की धारा 264 के अनुसार प्रत्येक प्रांत में लोक–सेवा आयोग की स्थापना की व्यवस्था है। अप्रैल 1937 में अधिनियम के प्रभावी होने पर अनेक प्रान्तों में लोक–सेवा आयोग स्थापित हुए।

14.2 राज्य सेवाएं एवं लोक सेवा आयोग

भारत के नये संविधान के भाग XIV के अनुच्छेद 315 से 323 में राज्य के लिए लोक–सेवा आयोग की व्यवस्था है। राज्यों के लिए संयुक्त लोक–सेवा आयोग का भी प्रावधान है। आज प्रत्येक राज्य में स्वयं का लोक–सेवा आयोग है और संघ लोक–सेवा आयोग केन्द्र–शासित प्रदेश की सेवाओं के लिए भर्ती में सहयोग करता है। सदस्य संख्या के आधार पर विभिन्न राज्यों के लोक–सेवा आयोगों में एकरूपता नहीं है। उत्तर प्रदेश में एक अध्यक्ष व सात सदस्य होते हैं जबकि असम में एक अध्यक्ष व मात्र दो सदस्य हैं। राज्य लोक–सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य राज्यपाल द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। राज्यपाल मन्त्रिमण्डल की सलाह पर यह कार्य करता है। दो या अधिक राज्यों के संयुक्त लोक–सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। लोक–सेवा आयोग के कम से कम आधे सदस्य वे व्यक्ति होने चाहिए जिन्हें भारत सरकार या राज्य शासन में कम से कम दस वर्ष की सेवा का अनुभव प्राप्त है। इस प्रावधान का उद्देश्य आयोग में पर्याप्त अनुभव प्राप्त अधिकारियों का समावेश सुनिश्चित करना था। वास्तविकता यह है कि आयोग–संरचना में सामान्यतः अधिकारी तत्व का बाहुल्य दिखायी देता है। सदस्य का कार्यकाल 6 वर्ष या 62 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, हो सकता है। सदस्यों की सेवा–शर्तें संघ लोक–सेवा आयोग के समान हैं। एक राज्य से दूसरे राज्य में इनके वेतन में भिन्नता पायी जाती हैं।

आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए संविधान ने अध्यक्ष और सदस्यों की पूर्व पद पर पुनर्नियुक्ति प्रतिबन्धित की है। इन्हें राज्य लोक–सेवा आयोग के अध्यक्ष या संघ लोक–सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य के

अतिरिक्त संघ या राज्य शासन में किसी अन्य पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। द्वितीय, संविधान के अनुच्छेद 317 के अन्तर्गत वर्णित प्रक्रिया के अनुसार आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को दुराचार के आरोप में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। राष्ट्रपति पूरे प्रकरण को सर्वोच्च न्यायालय के विचारार्थ प्रस्तुत करेगा। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जांच की जायेगी और उसकी अनुशंसा करने पर ही अपदस्थ किया जा सकता है। अध्यक्ष या सदस्य दुराचरण का दोषी माना जायेगा, यदि वह शासकीय संविदा, समझौते या उनसे प्राप्त लाभ में सहभागी हो या आर्थिक लाभ प्राप्त करता हो। अनुच्छेद 317 में यह भी उल्लेख है कि अध्यक्ष या सदस्य के दिवालिया होने पर, या अपने कार्यकाल में कोई अन्य वैतनिक कार्य करना स्वीकार करने पर, या राष्ट्रपति की राय में मानसिक अथवा शारीरिक दुर्बलता के कारण कार्य करने में असमर्थ होने पर, राष्ट्रपति द्वारा आदेश जारी कर पदच्युत किया जा सकता है।

संवैधानिक संरक्षणः— भारत के संविधान ने सेवाओं को निम्नलिखित संरक्षण प्रदान किया है—

1. अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत लोक—सेवाओं और राज्य के पदों के लिए भर्ती और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा—शर्तें राज्य विधानसभा के अधिनियम द्वारा नियन्त्रित की जायेंगी।
2. अनुच्छेद 310 के अनुसार राज्य लोक—सेवा का प्रत्येक सदस्य राज्य विधानसभा के अधीन नागरिक पद पर कार्यरत व्यक्ति राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त पद पर रह सकेगा।
3. अनुच्छेद 311 में राज्य की नागरिक सेवाओं को कानूनी और वैध सेवामुक्ति, अपदस्थता या पदावनति के लिए दो आवश्यक शर्तें पूरी करने का प्रावधान है। शर्तें इस प्रकार हैं :

    (अ) सेवामुक्ति, अपदस्थ करना या पदावनति आदेश समर्थ सत्ता द्वारा दिया जाय; और

    (ब) प्रभावित व्यक्ति को, अपवादों को छोड़कर, उसके विरूद्ध प्रस्तावित कार्यवाई के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण देने का उपयुक्त अवसर प्रदान किया गया हो।
4. मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत नागरिकों को 'समानता के अधिकार' की संविधान—प्रदत्त सुरक्षा प्राप्त है। अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार के मामले में अवसर की समानता प्रदान करता है। धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्मस्थान, निवास के आधार पर राज्य प्रदत्त रोजगार में किसी को अयोग्य नहीं समझा जायेगा या कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।
5. अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत वित्तीय आपात—स्थिति में केन्द्र शासन राज्य के समस्त या वर्ग—विशेष के लोक—सेवकों को, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, वेतन तथा भत्तों में कटौती के निर्देश दे सकता है।

राज्य लोक सेवाएंः— संघ सरकार के समान राज्य सरकारों में भी अपनी—अपनी लोक सेवाएं होती हैं। राज्य की लोक सेवाएं भी श्रेणियों तथा ग्रेड्स में विभक्त होती है। राज्य सरकारें उन्ही विषयों या विभागों पर सेवा नियम बनाती हैं जो राज्य सूची के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। राज्यों की लोक सेवाओं में पदों तथा सेवा शर्तों में विभिन्नता देखने को मिलती है क्योंकि प्रत्येक राज्य अपनी ऐतिहासिक निरन्तरता, पर्यावरण आवश्यकता तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासन संचालित करता है। सामान्यतः राज्यों में लोक सेवाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार होता है।

1. राज्य प्रशासनिक सेवाएं
2. राज्य लेखा सेवाएं
3. राज्य लेखा अधीनस्थ सेवाएं
4. राज्य सचिवालय सेवाएं
5. विभागीय सेवाएं

वर्गीकरण या सेवा—संरचनाः— राज्य शासन के विधिक उत्तरदायित्वों के व्यवस्थित और पर्याप्त परिपालन के लिए विभिन्न श्रेणियों एवं योग्यता—सम्पन्न हजारों—लाखों लोक—सेवकों को भर्ती करने की आवश्यकता होती है। इसमें वे कर्मचारी भी सम्मिलित हैं जिन्हें कार्य विशेष के लिए नियुक्त किया जाता है और उनका वेतन कार्यमद से दिया

जाता है तथा उन्हें नियमित शासकीय सेवक नहीं माना जाता। इसके अतिरिक्त वह कर्मचारी जो आकस्मिक आधार पर, अंशकालिक और अवैतनिक अधिकारी के रूप में सेवा में रखे जाते हैं, उनका वेतन आकस्मिक निधि से दिया जाता हैं। राज्य शासन में सेवा कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या स्थायी होती है या उन पदों को कालान्तर में स्थायी कर दिया जाते है। प्रशासक और व्यावसायिक विशेषज्ञ से लगाकर अकुशल श्रमिक तक लगभग सभी लोक–सेवा इस विशाल समूह में सम्मिलित हैं।

प्रथम श्रेणी राज्य–सेवा:– सामान्यतः प्रथम श्रेणी सेवाएँ उन पदो के लिए निर्मित हुईं जो अखिल भारतीय सेवाओं के वरिष्ठ पद–स्तर और उत्तरदायित्व के समतुल्य हैं। ये सेवाएँ ली आयोग (1924) की अनुशंसाओं के अनुपालन के फलस्वरूप निर्मित की गयीं। आयोग की अनुशंसा का उद्देश्य अखिल भारतीय सेवाओं का धीरे–धीरे उन्मूलन एवं उनके स्थान पर प्रथम श्रेणी सेवाओं को स्थापित करना था। लगभग प्रत्येक विभाग में अपनी प्रथम श्रेणी सेवा है। अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओं के समान प्रथम श्रेणी पद के वेतनमान में एकरूपता नहीं पायी जाती है, एक विभाग से दूसरे विभाग के वेतनमान में भिन्नता है। केन्द्र तथा अखिल भारतीय सेवाओं की भाँति इनके वेतनमान में कनिष्ठ तथा वरिष्ठ या नियमित तथा प्रवर श्रेणी की दो वेतन–श्रेणियाँ उपलब्ध हैं। अनेक राज्य–सेवाओं में प्रवर श्रेणी वेतन का प्रावधान है।

द्वितीय श्रेणी राज्य–सेवा:– द्वितीय श्रेणी राज्य–सेवा की संरचना प्रथम श्रेणी सेवा की तुलना में स्तर तथा उत्तदायित्व की दृष्टि से निम्न परन्तु पर्याप्त महत्वपूर्ण पदों के लिए की गयी। इन पदों पर नियुक्ति करने का अधिकार राज्य शासन में निहित है तथा ये पद राजपत्रित श्रेणी के पद हैं। प्रान्तीय सेवाओं का प्रारम्भ लोक–सेवा के लिए गठित ली आयोग (1886–87) की अनुशंसा पर आधारित है। प्रथम श्रेणी के समान इस सेवा के वेतनमान में भी एकरूपता नहीं है। इनमें राज्य लोक–सेवा (उप–जिलाधीश), राज्य लेखा–सेवा, राज्य पुलिस–सेवा, विक्रय–कर अधिकारी और रोजगार आदि सम्मिलित हैं। इन सेवाओं के लिए आंशिक परीक्षा और आंशिक चयन दोनों ही स्थितियों में लोक–सेवा आयोग द्वारा भर्ती की जाती है। इस प्रकार राज्य लोक–सेवा आयोग प्रत्येक वर्ष राज्य लोक–सेवा, राज्य पुलिस–सेवा, विक्रय–कर अधिकारी, सहायक पंजीयक, सहकारी समितियों, रोजगार अधिकारी आदि के लिए उम्मीदवार चयन हेतु मिलीजुली प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन करता है।

तृतीय श्रेणी सेवा:– प्रत्येक विभाग में तृतीय श्रेणी सेवाओं के अन्तर्गत अधीनस्थ/कार्यपालिका और लिपिकीय पद होते हैं। कार्यपालिका वर्ग में नायब–तहसीलदार, उप/सहायक शाखा निरीक्षक, उपनिरीक्षक पुलिस, उच्चतर माध्यमिक स्कूल शिक्षक, आदि सम्मिलित हैं। इस संवर्ग में इन पदों से उच्च परन्तु अराजपत्रित पद, जैसे– तहसीलदार, आबकारी निरीक्षक, लिपिकीय सेवाओं में लिपिक, आशुलिपिक, सहायक अधीक्षक, मुख्य लिपिक और अधीक्षक आदि शामिल हैं। इन पदों पर आंशिक चयन खुली प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा एवं आंशिक चयन भर्ती द्वारा किया जाता हैं। यह भर्ती लिखित, मौखिक परीक्षा या साक्षात्कार द्वारा की जाती है। इस संवर्ग के अन्तर्गत पदोन्नति के लिए पर्याप्त उदार प्रावधान है।

चतुर्थ श्रेणी सेवा:– यह सेवाएँ विभाग अपरिहार्य अंग हैं और इनकी व्यवस्था भी विभागीकृत है। स्वाधीनता के पूर्व इन्हें निम्न सेवाएँ कहा जाता था। इस वर्ग में भृत्य, दफतरी, पत्रवाहक, अर्दली, चौकीदार, खलासी, वार्ड सेवक, प्रयोगशाला सेवक आदि आते हैं। इन पदों का सामान्य लक्षण यह है कि यह अधिकांशतः अप्रशिक्षित या अर्द्ध–प्रशिक्षित होते हैं और श्रम–कार्य करते हैं। पहले अवकाश तथा पेन्शन आदि की दृष्टि से इनकी सेवा–शर्तें कम लाभप्रद थीं, लेकिन अब इन कमियों को दूर किया जा चुका है और इनके वेतन, भत्ते तथा अन्य सेवा–शर्तों में व्यापक सुधार हैं। चतुर्थ श्रेणी से तृतीय श्रेणी सेवा में पदोन्नति कदाचित दूर की बात है, यद्यपि देर से ही सही, अब भृत्य वर्ग से लिपिक, टाइपिस्ट आदि पदों पर आवश्यक शैक्षणिक स्तर एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने पर पदोन्नति प्रकरण सामने आते हैं।

राज्य लोक सेवा आयोग के कार्य:– अनुच्छेद 320 के अनुसार राज्य लोक–सेवा आयोग के निम्नलिखित कार्य हैं–

1. संघ लोक–सेवा आयोग और राज्य लोक–सेवा आयोग द्वारा क्रमशः संघ तथा राज्य सेवाओं में नियुक्ति हेतु परीक्षाओं का आयोजन करना।
2. यदि दो या अधिक राज्य लोक–सेवा आयोग से किसी भी सेवा में संयुक्त भर्ती के लिए योजना बनाने या

संचालित करने का आग्रह करें, जिसके लिए विशेष योग्यताएं आवश्यक हों।

3. संसद द्वारा संघ लोक–सेवा आयोग तथा राज्य विधानसभा द्वारा राज्य लोक–सेवा आयोग को सेवाओं के सम्बन्ध में सौंपे गये अन्य कार्य।

4. परामर्श प्रदान करना–

 (अ) लोक–सेवाओं में भर्ती की पद्धति से सम्बन्धित प्रकरणों में,

 (ब) लोक–सेवाओं में नियुक्ति, पदोन्नति, एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानान्तरण, उक्त नियुक्तियों, पदोन्नतियों और स्थानान्तरण के लिए उपयुक्त व्यक्तियों से सम्बन्धित सिद्धान्तों के विषय में,

 (स) राज्य शासन की सेवाओं में कार्यरत कर्मचारियों के अनुशासन सम्बन्धी समस्त प्रकरणों में प्रस्तुत स्मरण–पत्र, प्रार्थना–पत्र आदि पर,

राज्यपाल नियम बनाकर ऐसे प्रकरण स्पष्ट कर सकता है जिनमें सामान्यतः या विशेष परिस्थितियों में शासन के लिए आयोग से परामर्श लेना आवश्यक न हो। इन नियमों को विधायिका के प्रत्येक सदन में रखना आवश्यक है। विधायिका उनमें संशोधन कर सकती है। महाराष्ट्र में इस प्रकार के नियम बनाकर आयोग के अधिकार–क्षेत्र में कमी की गयी–(i) अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों को प्रभावित करने वाले प्रकरणों में, (ii) विशिष्ट पद जिन पर प्रतियोगी परीक्षा की सामान्य पद्धति से नियुक्ति उपयुक्त न हो अथवा राजनीतिक दृष्टि से सम्बद्ध हो, (iii) संविधान के अनुसार उच्च न्यायालय के परामर्श पर की जाने वाली न्यायिक नियुक्तियां, (iv) विभागाध्यक्ष आदि पद जिन पर राज्य शासन नियुक्ति करता हे, नियुक्तियां एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही।

संविधान के अनुच्छेद 321 के अनुसार राज्य विधानसभा लोक–सेवा आयोग की शक्तियों में विस्तार के लिए कानून बना सकती है। महाराष्ट्र शासन ने इस प्रावधान का उपयोग कर राज्य सचिवालय तथा बम्बई नगर निगम के कर्मचारियों तक आयोग की शक्तियों को विस्तृत किया। इन कार्यों के अतिरिक्त महाराष्ट्र लोक–सेवा आयोग राज्य शासन के अधिकारियों के लिए विभागीय परीक्षा, भाषा–परीक्षा, स्थानीय निकायों के कुछ कर्मचारियों के लिए विभागीय परीक्षा आयोजित करता है। यह बम्बई केन्द्र पर संघ लोक–सेवा आयोग की परीक्षाओं की व्यवस्था करता है। उत्तर प्रदेश में नगर महापालिका और जिला परिषद् की कुछ पद–श्रेणियां आयोग के अधिकार–क्षेत्र के अन्तर्गत लायी गयी हैं।

लोक–सेवा आयोग अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए विभागाध्यक्षों, अन्य शासकीय अधिकारियों, प्रत्याशियों के लिए बाह्यविशेषज्ञों, परीक्षा संचालन के लिए परीक्षकों, निरीक्षकों और वीक्षकों आदि का सहयोग लेता है। आयोग तथा शासन के विभिन्न विभागों के बीच सम्बन्ध में मुख्यमंत्री एवं मुख्य सचिव समन्वय स्थापित करते हैं, लेकिन अपने दिन–प्रतिदिन के कार्यों एवं वैधानिक उत्तरदायित्व के निर्वहन में आयोग शासन के विभिन्न विभागों एवं विभागाध्यक्षों में प्रत्यक्षतः सम्पर्क करता है। राज्य लोक–सेवा आयोग अनुच्छेद 323 के अनुसार प्रतिवर्ष अपने क्रियाकलाप के सम्बन्ध में राज्यपाल के समक्ष प्रतिवेदन करता है। राज्यपाल राज्य विधानसभा के प्रत्येक सदन में प्रतिवेदन व ज्ञापन इस व्याख्या के साथ प्रस्तुत करते हैं कि आयोग की अनुशंसा कतिपय प्रकरणों में, यदि कोई हों, किस कारण स्वीकार नहीं की गयी। आयोग के अतिरिक्त कार्यों, यथा नगरपालिका एवं स्थानीय निकाय आदि पर व्याख्यात्मक ज्ञापन का उपबन्ध लागू नहीं हैं।

राज्य लोक–सेवा आयोग दो प्रकार के कार्य करता है। ब्रिटेन तथा अमेरिका के लोक–सेवा आयोग के समान इसका कार्यक्षेत्र विस्तृत नहीं है क्योंकि वह लोक–सेवकों के प्रशिक्षण और वृत्तिक विकास के कर्तव्य निष्पादित करता है। द्वितीय, अनुच्छेद 320(3) के अन्तर्गत कतिपय राज्य शासनों ने अनेक प्रकरणों में दुरूपयोग कर अनेक पदों को आयोग के क्षेत्र के बाहर कर लिया। लम्बे समय तक तदर्थ नियुक्तियां इसका उदाहरण हैं और आयोग के समक्ष उपस्थित होने पर अंततः उनका चयन नहीं किया गया। तीसरे, केन्द्र शासन द्वारा संघ लोक–सेवा आयोग की अनुशंसा अस्वीकार करने की तुलना में राज्य शासन द्वारा राज्य लोक–सेवा आयोग की अनुशंसा अस्वीकार करने की संख्या अपेक्षाकृत अधिक हैं।

राज्य सेवाओं में भर्ती:– प्रत्येक वर्ग के पदों पर पद के लिए निर्धारित भर्ती नियमों की आवश्यकताओं के अनुसार भर्ती की जाती है। पद पर भर्ती निम्न वर्ग से पदोन्नति, प्रत्यक्ष भर्ती, या अन्य सेवा से स्थानान्तरण द्वारा निर्धारित

नियमों के अनुसार की जाती है। एक विभाग से दूसरे विभाग में, या एक ही विभाग के अन्तर्गत विभिन्न स्तरों पर भर्ती प्रणाली में भिन्नता रहती है। जहाँ पदों को आंशिक प्रत्यक्ष भर्ती और आंशिक पदोन्नति द्वारा भरे जाने का प्रावधान है, रिक्त पद भरने के लिए दोनों प्रणालियों का अनुपात नियमानुसार निर्धारित रहता है। प्रत्यक्ष भर्ती के लिए उम्मीदवार की आयु–सीमा, योग्यता और अनुभव नियमानुसार सुनिश्चित किये जाते हैं।

इस प्रणाली की विशेषताओं की ओर ध्यान देना आवश्यक है। प्रथम, विभागाध्यक्ष के अनेक कार्यालय ऐसे हैं जहाँ केवल निम्न स्तर पर प्रत्यक्ष भर्ती की जाती है और लगभग सभी उच्च पद पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। द्वितीय, अनेक पदों के लिए पदोन्नति का अनुपात निश्चित नहीं है। तृतीय, यह भी पाया गया है कि अनेक प्रकरणों में पदोन्नति द्वारा भरे गये पद निर्धारित अनुपात से अधिक हैं। अन्त में, इस वर्ग की सेवा में पदोन्नति के व्यापक अवसर हैं, एक सेवा से दूसरी सेवा में पदार्पण कदाचित ही होता है।

दो अन्य बिन्दुओं का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। संविधान के अन्तर्गत (अनु0 320(3)) राज्य लोक–सेवा आयोग राज्य–शासन को लोक–सेवाओं और असैनिक पदों पर भर्ती प्रणाली से सम्बन्धित सभी मामलों में परामर्श देने के लिए अधिकृत है। द्वितीय, शासकीय सेवा सामान्यतः अनुबन्ध नहीं अपितु निश्चित समयाधि के लिए राज्यपाल/राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त (अनु0 310(i)) होती है। प्रसादपर्यन्त सिद्धान्त का प्रयोग निश्चित प्रतिबन्धों के अन्तर्गत किया जाता है। अनुच्छेद 311 के अनुसार (i) लोक–सेवा के सदस्य को किसी अधिकारी द्वार पदच्युत या सेवामुक्त नहीं किया जा सकता, और (i) ''किसी भी व्यक्ति को उसके विरूद्ध आरोप से अवगत कराने, तत्सम्बन्ध में सुनवाई का उपयुक्त अवसर प्रदान कर, जाँच के उपरान्त ऐसा दण्ड प्रस्तावित किये बना तब तक पदच्युत या हटाया या पदावनत नहीं किया जा सकता, जब तक उसे प्रस्तावित दण्ड के सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का उपयुक्त अवसर प्रदान नहीं कियागया हो''।

पदोन्नतिः– स्वतन्त्रता के पूर्व, भारत में भर्ती की दो व्यवस्थाएँ प्रचलित थीं। इन्हें सुविधा की दृष्टि से मद्रास रचना और उत्तर प्रदेश रचना के नाम से सम्बोधित किया जाता था। दक्षिणी राज्यों में तथा पुराने बम्बई प्रान्त में प्रचलित व्यवस्था यह थी कि लिपिक पद पर जिला स्तर पर ही भर्तियाँ की जायें, तब नीचे से पदोन्नति द्वारा उच्च पदों को भरा जाये। अधीन अधिशासी तथा राजपत्रित पद करीब–करीब नहीं थे। उत्तर प्रदेश में बहुत लम्बी अवधि से विभिन्न स्तरों पर प्रत्यक्ष भर्ती का चलन रहा है। डिप्टी कलेक्टर, नायब तहसीलदार, सिविल जज आदि इसी भर्ती व्यवस्था से नियुक्त होते थे। किन्तु प्रत्येक स्तर पर पदोन्नति कोटा भी था। स्वतन्त्रता के पश्चात् उत्तर प्रदेश रचना की प्रवृत्ति का अनुकरण करने की प्रवृत्ति रही है और अधिकांश राज्यों में विभिन्न स्तरों पर प्रत्यक्ष भर्ती व्यवस्था अपनायी जा रही है तथा पदोन्नति व्यवस्था भी बनाये रखी गयी है। इस प्रकार, समस्त राज्यों में पदोन्नति की उचित व्यवस्था प्रचलित है। प्रायः पदोन्नति वरिष्ठता सह–योग्यता के आधार भी होती हैं।

महत्वपूर्ण राज्य प्रशासनिक सेवाओं में पदोन्नति के अवसरों के बारे में कहा जा सकता है कि ये सेवाएँ जिनते विभिन्न प्रकार के कार्य सम्पादित करती हैं इन्हें सहज ही आई0ए0एस0 के समतुल्य बना देती हैं। अतः इस सेवा के सदस्यों के लिए पदोन्नति की विशेष सम्भावनाएँ बनायी गयी हैं।

राज्य स्तर पर लोक सेवा प्रशिक्षणः– संघीय शासन व्यवस्था में राज्यों को भी अपनी प्रशासनिक योग्यता बनाए रखनी पड़ती है क्योंकि विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में उन्हें अहम् भूमिका निभानी पड़ती है। अपने पदाधिकारियों की प्रशासनिक योग्यता बनाए रखने की खातिर अभी राज्यों में प्रशासनिक प्रशिक्षण की सुविधा विकसित की गयी है। व्यवस्थिति और वैज्ञानिक प्रशिक्षण पद्धति और प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की कोशिश राज्य सरकारों ने की है। परन्तु भारत में सर्वाधिक विकसित और व्यवस्थित राज्य प्रशिक्षण संस्थान राजस्थान राज्य में विकसित किया गया है। वहां 'हरीशचन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान' जयपुर में स्थापित किया गया है। इसकी स्थापना 1957 में की गयी है। यहां 'लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशानिक अकादमी' के तर्ज पर प्रशिक्षण प्रणाली विकसित की यगी है।

परन्तु सभी राज्यों में एकीकृत और समेकित स्तरीय प्रशिक्षण संस्थानों का अभाव है। प्रशिक्षण नीति का अवैज्ञानिक होना और प्रशिक्षण पद्धति में समन्वय का अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

प्रशिक्षण पद्धति और प्रशिक्षण सुविधाओं का मूल्यांकनः– एक आदर्श और स्पष्ट राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति–निर्माण भारत की अनिवार्यता है। भारतीय आदर्श, उद्देश्य दीर्घकालीन और अल्पकालीन प्राथमिकताएं, प्राथमिकताओं से

सम्बन्धित रणनीति, पद्धति, संगठन इत्यादि का परीक्षण, प्रशिक्षण, नीतियों और कार्यक्रमों में दृष्टिगोचर होना चाहिए। विस्तृत सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण में आर्थिक, तकनीकी और प्रशासनिक वातावरण को स्वस्थ करने की आवश्यकता है आज देश को। इसलिए एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्रणाली को विकसित करने का प्रयास भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही होता रहा है। संघीय शासन व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए प्रादेशिक और स्थानीय स्तरों पर भी प्रशिक्षण व्यवस्था को मजबूत करने की आवश्यकता होती है। केन्द्रीय स्तर का प्रशिक्षण डिविजन बड़ी संख्या में राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय प्रशिक्षण संस्थाओं के बीच सम्बन्ध बनाए रखने का कार्य करता है।

केन्द्रीय स्तर पर स्थायी राष्ट्रीय प्रशिक्षण आयोग की स्थापना का सुझाव दिया जाता है जो भारत की प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित की जाय और जिसमें संयुक्त सचिव (प्रशिक्षण) को सदस्य–सचिव के रूप में नियुक्त किया जाय। इस आयोग में योजना मंत्रालय, वित्तालय, शिक्षा मंत्रालय, कृषि मंत्रालय और उद्योग मंत्रालय इत्यादि प्रमुख मंत्रालयों से स्थायी प्रतिनिधि भेजे जाने चाहिए। इस आयोग को देश के सर्वोच्च प्रशिक्षण सम्बन्धी नीति–निर्माण कार्य की संख्या के रूप में कार्य करना चाहिए। हालांकि आयोग सलाहकारी प्रकृति का हो परन्तु उसकी सिफारिशों को महता प्रदान की जाय।

राज्यों में प्रशिक्षण व्यवस्थाओं का समन्वित कार्यक्रम अपेक्षाकृत कम विकसित हो पाया है। इसे और विकसित करने के लिए आवश्यकता है। राज्य प्रशिक्षण बोर्ड के गठन की जो राष्ट्रीय प्रशिक्षण आयोग के मार्गदर्शन में राज्य स्तर पर प्रशासनिक अधिकारियों को प्रशिक्षित करने की नीति तैयार करे और उनहें प्रशिक्षित करे। प्रशिक्षण नीति और नियुक्ति नीति में सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण और प्रदर्शन में उचित तारतम्य होना चाहिए, अर्थात् प्रदर्शन मूल्यांकन के बाद प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। अंतः प्रशिक्षण सुविधाओं से वंचित लिपिकीय सेवा के कर्मियों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। 'बाबू नौकरशाही' को दक्ष बनाए बगैर प्रशासनिक दक्षता और प्रभावशीलता नहीं बढ़ाया जा सकता। इन्हें भी उचित प्रशिक्षण देना अनिवार्य है ताकि वे नवीनतम कार्य पद्धति से परिचित हो सके और नस्तीकरण की पद्धति को सरल बनाने की दिशा में कदम बढ़ा सके। इस तरह प्रशिक्षण द्वारा योग्य और दक्ष मानव संसाधन का विकास सम्भव है जिनका उपयोग देश की बढ़ती आवश्यकता को पूरा करने के लिए किया जा सकता है।

आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए संविधान ने अध्यक्ष और सदस्यों की पूर्व पद पर पुनर्नियुक्त प्रतिबन्धित की है। इन्हें राज्य लोक–सेवा आयोग के अध्यक्ष या संघ लोक–सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य के अतिरिक्त संघ या राज्य शासन में किसी अन्य पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। द्वितीय, संविधान के अनुच्छेद 317 के अन्तर्गत वर्णित प्रक्रिया के अनुसार आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को दुराचार के आरोप में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। राष्ट्रपति पूरे प्रकरण को सर्वोच्च न्यायालय के विचारार्थ प्रस्तुत करेगा। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जाँच की जायेगी ओर उसकी अनुशंसा करने पर ही अपदस्थ किया जा सकता है। अध्यक्ष या सदस्य दुराचरण का दोषी माना जायेगा, यदि वह शासकीय संविदा, समझौते या उनसे प्राप्त लाभ में सहभागी हो या आर्थिक लाभ प्राप्त करता हो। अनुच्छेद 317 में यह भी उल्लेख है कि अध्यक्ष या सदस्य के दिवालिया होने पर, या अपने कार्यकाल में कोई अन्य वैतनिक कार्य करना स्वीकार करने पर, या राष्ट्रपति की राय में मानसिक अथवा शारीरिक दुर्बलता के कारण कार्य करने में असमर्थ होने पर, राष्ट्रपति द्वारा ओदश जारी कर पदच्युत किया जा सकता है।

14.3 सारांश

राज्य लोकसेवा की व्यवस्था का दायित्व सामान्य प्रशासन विभाग पर होता है। किन्तु, सत्तर दशक के आसपास अधिकांश राज्यों ने अपने राज्यों की लोकसेवा के प्रबन्ध के लिए एक स्वतन्त्र कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग की स्थापना की। यह विभाग मुख्य सचिव के नियन्त्रण में कार्य करता है। मुख्य सचिव राज्य की लोकसेवा का प्रमुख और अन्तःकरण की आवाज होता है। उसका कार्मिक प्रबन्ध से अत्यधिक सम्बन्ध होता है की जानकारी निम्न कार्यों के सन्दर्भ में प्राप्त की जा सकती हैः–

1. केन्द्र और राज्य की सेवाओं के अधिकारियों की नियुक्ति, पदस्थापना, हस्तान्तरण, पदोन्नति, अवकाश की स्वीकृति आदि से है ;

2. अखिल भारतीय सेवाओं और पद से सम्बन्धित मामलों से
3. पद वर्गीकरण और भर्ती नियम
4. राज्य लोक सेवा आयोग
5. समस्त प्रतिस्थानों के अधिकारों और वैधानिक हितों की रक्षा करना
6. लोक सेवा में पिछड़े वर्गों को प्रतिनिधित्व प्रदान करना
7. शासकीय कर्मचारियों के संगठनों से सम्बन्धित मामलों को देखना और
8. शासकीय कर्मचारियों के आचरण नियमों से सम्बन्धित विषयों को देखना।

14.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5. **भारतीय प्रशासनः**— डॉ0 अवस्थी एण्ड अवस्थी, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
6. **भारतीय प्रशासनः**— प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
7. **भारतीय लोक प्रशासनः**— शालिनी वाधवा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
8. **आधुनिक लोक प्रशासनः**— आर0के0 दूबे लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

14.5 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः—

3. निम्न में से किसे राज्य प्रशासन का शिल्पकार माना जाता है?
   (i) राज्यपाल (ii) मुख्यमंत्री
   (iii) संघ लोक सेवा आयोग (iv) राज्य लोक सेवा आयोग
4. राज्य लोक सेवा आयोग संघ लोक सेवा आयोग की भाँति है एक :—
   (i) केन्द्रीय संस्था (ii) संवैधानिक निकाय
   (iii) विधिक संस्था (iv) अर्द्ध न्यायिक निकाय
5. राज्य लोक सेवा आयोग से सम्बन्धित अनुच्छेद है—
   (i) अनुच्छेद 308—314 (ii) अनुच्छेद 324—329
   (iii) अनुच्छेद 315—323 (iv) अनुच्छेद 338—338 (ख)
6. राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की सेवा शर्तों का निर्धारण करने का अधिकार है।
   (i) राष्ट्रपति (ii) राज्य का मुख्यमंत्री
   (iii) ए और बी दोनो (iv) राज्य का गर्वनर

लघुउत्तरीय प्रश्नः—

1. राज्य लोक सेवा आयोग का गठन बताइए।
2. राज्य लोक सेवा आयोग का कार्य एवं दायित्वों का वर्णन करिए।
3. राज्य प्रशासन में राज्य लोक सेवा आयोग की क्या महत्ता है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः—

1. राज्य लोक सेवा आयोग के संगठनात्मक स्वरूप एवं कार्यों का वर्णन करिए।
2. एक संवैधानिक निकाय के रूप राज्य लोक सेवा आयोग की दायित्वों एवं शक्तियों का वर्णन करिए।

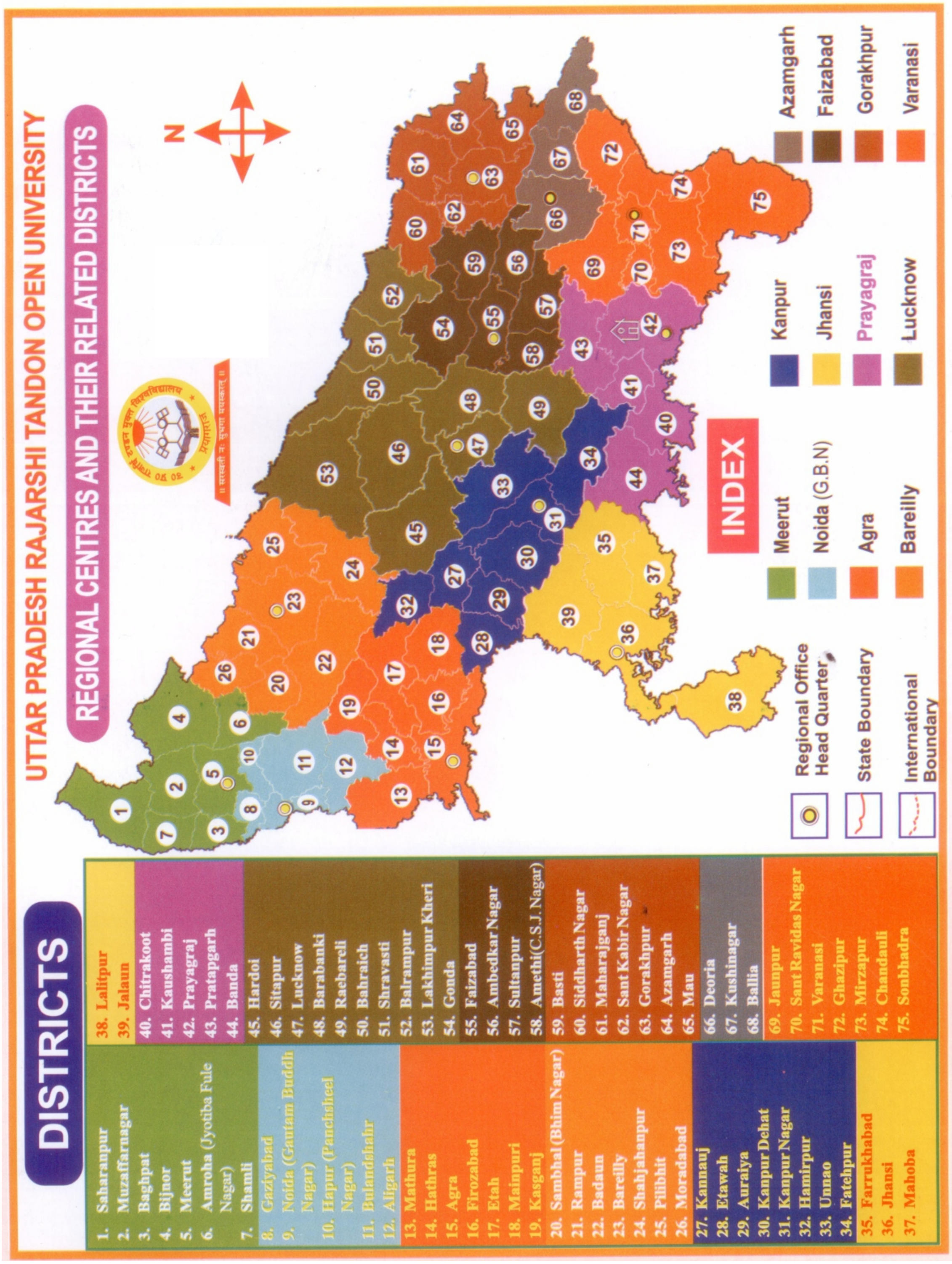

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333